मानवता की महानता मानव होने में नहीं, बल्कि मानवीय होने में है।
-महात्मा गांधी

दुबई जिस तरह बाढ़ से जूझ रहा है, वह दिखाता है कि दुनिया के इन अत्याधुनिक शहरों का मॉडल प्राकृतिक आपदाओं के लिए तैयार नहीं है। दुबई का संकट यह इशारा तो करता ही है कि जलवायु किस तरह से बदल रही है, साथ ही यह भी बताता है कि अगर हम समय रहते नहीं चेते, तो स्थितियां और विकट होंगी।

डूबता दुबई

पिछले दिनों संयुक्त अरब अमीरात (यूएई), ओमान, कतर और बहरीन जैसे देशों में, जो अपने सूखे रेगिस्तानों, गगनचुंबी इमारतों और वैभवपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए जाने जाते हैं, भीषण बारिश चिंतित करने वाली तो है ही, दुनिया के कुछ सर्वाधिक विकसित शहरों में व्यवस्थाओं की कलई भी खोलती है। आलम यह है कि यूएई के दुबई, अबू धाबी और अल-ऐन जैसे शहरों में 24 घंटों के भीतर इतना पानी बरसा, जितना यहां डेढ़ साल में भी नहीं बरसता। उल्लेखनीय है कि ये दुनिया के वे क्षेत्र हैं, जो अमूमन काफी शुष्क रहते हैं और जहां लंबे समय तक बारिश न होना और फिर अनियमित बारिश होना सामान्य है, लेकिन इस बार जो बारिश हुई है, वह दुर्लभ है। दुबई की स्थिति यह खुलासा भी करती है कि इन अत्याधुनिक शहरों का मॉडल ऐसी प्राकृतिक आपदाओं के लिए तैयार नहीं है। अत्यधिक शहरीकृत होने के बावजूद यहां नमी को अवशोषित करने के लिए हरी जगहें काफी कम हैं। रेगिस्तानी भूमि में पानी को अवशोषित करने की सीमाएं भी होती हैं। यह भी दिखा कि यहां की जल निकासी सुविधाएं भी इतने उच्च स्तर की बारिश का सामना करने में असमर्थ हैं। इस खतरनाक बारिश के पीछे क्लाउड सीडिंग को भी वजह बताया जा रहा है। दरअसल, क्लाउड सीडिंग एक तकनीकी है, जिससे मौजूदा बादलों में हेर-फेर कर ज्यादा बारिश कराने में मदद मिलती है। विमान के जरिये बादलों में छोटे कण (सिल्वर आयोडाइड) गिरा कर बादल निर्मित करने की यह तकनीक दशकों पुरानी है और यूएई पिछले कई वर्षों में तपती जमीन को राहत देने के लिए इसका इस्तेमाल भी करता रहा है। जाहिर है कि क्लाउड सीडिंग बादलों को पानी गिराने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है, लेकिन जैसा कि ब्लूमबर्ग की रिपोर्ट भी कहती है, दुबई के संकट के लिए इसे एकमात्र वजह नहीं माना जा सकता। फिर यह भी कहा जा रहा है कि यहां बारिश से ठीक पहले क्लाउड सीडिंग नहीं की गई थी। जलवायु संकट को भी इसकी वजह

बताया जा रहा है, जिसे लेकर एमिरेट्स वाइल्डलाइफ सोसाइटी ने अपनी 2017 की रिपोर्ट में चेतावनी भी दी थी कि वैश्विक तापमान बढ़ने से यूएई में वार्षिक वर्षा में 200 फीसदी का इजाफा हो सकता है। हालांकि डूबते दुबई के पीछे यहां अति निम्न दाब का क्षेत्र बन जाना, क्लाउड सीडिंग या जलवायु में आ रहे बदलावों में किसकी कितनी भूमिका है, इसके आकलन के लिए तो विभिन्न पहलुओं का पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण करना होगा, जिसमें समय लगेगा। पर यह संकट जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों को दर्शाने के साथ ही यह भी बताता है कि यदि हम समय रहते नहीं चेते, तो स्थितियां और विकट होंगी।

पड़ोस में युद्ध से बेपरवाह पाकिस्तान

ईरान-इस्राइल युद्ध की खबर से न तो पाकिस्तान के आम लोगों में कोई चिंता दिखी और न ही पाकिस्तानी हुकूमत ने कोई प्रतिक्रिया जताई, जबकि पड़ोस में युद्ध से पाकिस्तान ही नहीं, अन्य मुल्कों पर भी असर पड़ना लाजिमी है। खासकर तेल की कीमतें तो आसमान छूने लगेंगी।

मरिआना बाबर
वरिष्ठ पाकिस्तानी पत्रकार

पिछले रविवार को जैसे ही पाकिस्तान के लोग जगे, उन्हें यही खबर मिली कि ईरान ने इस्राइल पर हवाई हमला कर दिया है और सैन्य अभियान अब भी जारी है। मेरी तत्काल प्रतिक्रिया थी कि इस्राइल भी पलटवार करेगा और इस क्षेत्र में एक नया युद्ध शुरू होने जा रहा है। ईरान और इस्राइल के बीच स्थित कई अरब देश भी इससे प्रभावित होंगे। हालांकि पिछले रविवार पाकिस्तान की सड़कों पर जीवन सामान्य था और आम लोगों को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ा कि ईरान ने युद्ध की घोषणा कर दी है। जो लोग टीवी देख रहे थे, केवल वही इस खबर में दिलचस्पी ले रहे थे, अन्यथा किसी को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी।

यहां तक कि पाकिस्तान की हुकूमत भी चुप थी। हालांकि पाकिस्तान में एक्स (ट्विटर) पर प्रतिबंध है, अधिकांश लोग इसे एक्सेस करने के लिए वीपीएन का इस्तेमाल कर रहे हैं। सरकार की तरफ से भी इस पर कोई बयान नहीं आया, विदेश मंत्री का भी नहीं।

मैंने ट्वीट करके प्रधानमंत्री को आपातकालीन सुरक्षा बैठक बुलाने के लिए कहा, क्योंकि स्थिति बहुत अप्रत्याशित थी और यह युद्ध किसी भी दिशा में जा सकता था। हालांकि दुनिया की कई सरकारें एक-दूसरे तथा ईरान और इस्राइल के संपर्क में थीं, लेकिन पाकिस्तान के मंत्री एवं अधिकारी बिल्कुल शांत थे। अन्य मुल्कों की तरह पाकिस्तान में तेल बहुत महंगा है और आर्थिक रूप से कमजोर लोगों की पहुंच से बाहर है। इसलिए मेरा पहला विचार यही था कि अगर पड़ोस में युद्ध होता है, तो तेल की कीमतें आसमान छूने लगेंगी।

पड़ोस में युद्ध पाकिस्तान के लिए कोई नई बात नहीं है। हममें से कई लोग भारत के साथ युद्ध से गुजर चुके हैं और अफगानिस्तान भी कभी शांत नहीं रहा है। इसलिए अब दूसरे पड़ोसी ईरान को युद्ध में शामिल होते और इसके प्रभाव को पसरते देखना डरावना था। लंबी और साझी सीमा के साथ ईरान पाकिस्तान का निकट पड़ोसी है। कभी-कभी दोनों तरफ के आतंकवादी हमले करते हैं और पाकिस्तान-ईरान सीमा पर

तस्करों के साथ झड़पें होती हैं, लेकिन आम तौर पर स्थानीय प्रशासन इससे निपटता है। सीमा पर विशेष रूप से पेट्रोल की तस्करी आम बात है और ऊपर से लेकर नीचे तक के अधिकारियों की इसमें मिलीभगत होती है और यह लगातार उनकी नाक के नीचे होता है। व्यवसायी अक्सर शिकायत करते हैं कि ईरान से होने वाली तस्करी उनके व्यवसाय को नुकसान पहुंचा रही है, लेकिन सरकार उस पर कोई ध्यान नहीं देती।

एक बार सरकार ने घोषणा की कि वह तस्करी को बर्दाश्त नहीं करेगी और उससे कठोरता से निपटेगी। इससे थोड़े समय के लिए तस्करी पर विराम लगा, लेकिन क्वेटा के दुकानदारों ने ईरानी दरी की कीमत बढ़ा दी। उनकी शिकायत थी कि इन दरियों की भारी मांग है, लेकिन सीमा पार से दरियां नहीं आती हैं, इसलिए कीमत बढ़ गई है। लेकिन तस्करी सौ फीसदी कभी नहीं रुकी और अब भी जारी है।

कुछ समय पहले ईरान ने बलूचिस्तान के भीतर हवाई हमले करके दुनिया को चौंका दिया था। उसका आरोप था कि ईरान-विरोधी आतंकवादी गुट वहां रहते हैं। उसके बाद पाकिस्तान ने भी ईरान के इलाकों पर बमबारी की और दावा किया कि ईरान के भीतर पाकिस्तान-विरोधी आतंकी गुटों को सुरक्षित पनाह मिली हुई है। सवाल उठता है कि अगर पाकिस्तान और ईरान, दोनों जानते हैं कि उनकी जमीन पर आतंकवादी गुट हैं, तो उन्हें दोनों मुल्कों द्वारा संरक्षण क्यों दिया जाता है। क्या दोनों मुल्क उन्हें प्रॉक्सी के तौर पर इस्तेमाल करते हैं? इससे दोनों मुल्कों के नागरिकों को बेहद खतरनाक और भ्रामक संदेश जाता है, जो एक-दूसरे को अपना मजबूत सहयोगी और मुस्लिम भाईचारे के हिस्से के रूप में देखते हैं और कई अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर एक साथ खड़े हैं। खैर, दोनों पक्षों के पीछे हटने से समझदारी कायम हुई। ईरान ने कूटनीतिक रिश्ते की बहाली के लिए अपने विदेश मंत्री को पाकिस्तान भेजा। अब दोनों मुल्कों के रिश्ते बेहतर हैं और इसी महीने के अंत में ईरानी राष्ट्रपति पाकिस्तान के दौरे पर आने वाले हैं।

इस्राइल पर ईरान के हमले ने, जिसमें अमेरिका, अन्य पश्चिमी देश एवं जॉर्डन इस्राइल की सहयता के लिए आगे आए, मुझे दो बातें याद दिला दीं।

पहली, दुनिया भर के मुल्कों को आशंका थी कि ईरान सीरिया में अपने राजनयिक मिशन पर हमले और वरिष्ठ अधिकारियों की मौत का बदला लेगा, लेकिन शक्तिशाली वायु सेना का दावा करने वाला इस्राइल हमले से हैरान रह गया। अमेरिका के नेतृत्व में बाहरी शक्तियां उसकी मदद के लिए आगे आईं। पश्चिमी समर्थकों की मदद के बिना इस्राइल अपनी रक्षा करने में असमर्थ था और वहां जान-माल का भारी नुकसान होता। दिलचस्प है कि जब इस्राइल ने कूटनीतिक नियमों का उल्लंघन कर सीरिया में ईरानी वाणिज्य दूतावास पर हमला किया, तो पश्चिमी देशों ने उसकी आलोचना नहीं की, लेकिन जब ईरान ने जवाबी कार्रवाई की, तो वे सभी ईरान की आलोचना करने लगे।

दूसरी बात को इस हफ्ते पाकिस्तान दौरे पर आए सऊदी विदेश मंत्री फैसल बिन फरहान और पाकिस्तानी विदेश मंत्री मोहम्मद इशाक डार ने संयुक्त प्रेस कॉन्फ्रेंस में अच्छी तरह से समझाया। उन्होंने कहा कि कुछ ऐसी बातें हैं, जिन पर बात करने में सबको शर्म आती है। दोनों विदेश मंत्रियों ने कहा कि जबसे इस्राइल और हमास के बीच युद्ध शुरू हुआ है, इस्राइल ने 30 हजार से ज्यादा फलस्तीनियों की गाजा में हत्या कर दी है। उन्होंने पूछा कि जब इस्राइल ने गाजा में अस्पतालों, स्कूलों, खेल के मैदानों, आवासीय घरों पर बम गिराया, तो इस्राइल समर्थक पश्चिमी लॉबी ने उन्हीं तकनीकों से इस्राइल को रोकने की कोशिश क्यों नहीं की, जिन तकनीकों से उन्होंने ईरानी हमले से इस्राइल को बचाया है? आप कल्पना कर सकते हैं कि ऐसा करने पर कितने सारे बच्चे बच जाते!

सिर्फ अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडन ने इस्राइल को तत्काल ईरान पर बमबारी करने से रोका और उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि इस्राइल ईरान पर हमला करता है, तो अमेरिका समर्थन नहीं करेगा। लेकिन क्या इस्राइल ईरान पर हमला करने से बाज आएगा? सऊदी विदेश मंत्री ने कहा, 'हम एक अस्थिर क्षेत्र में रहते हैं। यह क्षेत्र गाजा की मानवीय आपदा का दंश झेल रहा है और हमें और संघर्ष की आवश्यकता नहीं है, हम और टकराव नहीं चाहते।'

edit@amarujala.com

जीवन धारा

जग्गी वासुदेव

चीज कोई भी हो, उसे पाने की आपकी इच्छा किसी सीमा में सिमट कर नहीं रहती। इस तरह आपके अंदर सदा ही एक लालसा बनी रहती है, जो आपको प्रेरित करती रहती है कि कुछ और चाहिए, थोड़ा और चाहिए।

सीमाओं के पार होगा असीम का अनुभव

जीवन *जीने का आपका तरीका क्या है, क्या इस बात पर आपने कभी गौर किया है? आप चाहे कोई भी हों, आपकी हैसियत कुछ भी हो, आपके अंदर का कोई तत्व निरंतर यही इच्छा जाहिर कर रहा है कि इस समय की तुलना में आपका कद कुछ अधिक ऊंचा होना चाहिए। इस बुनियादी रहस्य को जानना जरूरी है। अगर आप धन बटोरने की इच्छा रखते हैं, तो आपकी अंतरात्मा कहती है और ज्यादा धन चाहिए। यदि आप पद और प्रतिष्ठा के प्रेमी हैं, तो और ऊंचे ओहदे की तलब होती है। यदि आप यश कमाने के कायल हैं, तो कहेंगे, 'मेरे यश की चर्चा दूर-दूर तक फैल जाए।' प्रेम का जिक्र होने पर आप और अधिक प्रेम की चाह रखेंगे। ज्ञान की बात चले, तो और ज्यादा ज्ञान बटोरना चाहेंगे। चीज कोई भी हो, उसे पाने की आपकी इच्छा किसी सीमा में सिमट कर नहीं रहती। इस तरह आपके अंदर सदा ही एक लालसा बनी रहती है, जो आपको प्रेरित करती रहती है कि कुछ और चाहिए, थोड़ा और चाहिए। आप अभी जिस स्थिति में हैं, उससे और अधिक विकास की लालसा आपको हमेशा रहती है।*

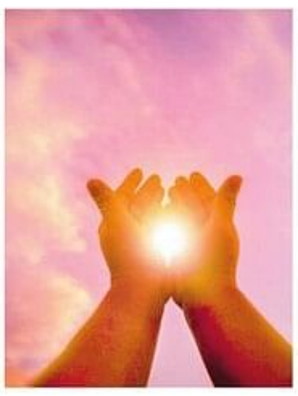

मान लीजिए, आपको इस संपूर्ण जगत का सम्राट बना दिया गया, तो क्या आप उससे संतुष्ट हो जाएंगे? नहीं। तब आप सोचेंगे, 'यह तो ठीक है, लेकिन वह जो चंद्रमा है, वह भी मुझे....'। चाहे आप कितना भी विकास कर लें, यह नहीं रुकता है। आपके अंदर घटित होने वाली इस विकास लालसा की सीमा आखिर कहां है? सीमा कहीं दिखाई दे रही है? असीम रूप से विकास की चाह तो आप रखते हैं, लेकिन मिलने वाले वैभव का उपभोग करने के लिए आपके पास साधन कौन-कौन से हैं? इन पांच इंद्रियों-देखने, सुनने, सूंघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के इन पंचेंद्रियों के माध्यम से ही आप जीवन का उपभोग और जगत को महसूस कर पा रहे हैं। आपकी सीमा अब यहीं तक है। आप असीम विकास की चाहत रखते हैं, उसे पाने और भोगने के लिए जिन-जिन चीजों का इस्तेमाल करते हैं, उनकी एक निश्चित सीमा है। जैसे चंद्रमा की यात्रा करने का इच्छुक व्यक्ति यदि बैलगाड़ी में यात्रा करे, तो कहां तक पहुंच सकता है? आपकी कोशिश भी कुछ वैसी ही है। यदि आप असीम का अनुभव करना चाहते हैं, तो आपको पांचों इंद्रियों की सीमाओं के पार जाना होगा। आपकी समझ का विकास होना चाहिए। समझ विकसित करने के लिए पहले इस बात की खोज करनी चाहिए कि आपकी समझ क्यों उलझी हुई है, उसे सुलझने से रोकने वाली चीज कौन-सी है? इसका कारण कदापि यह नहीं है कि उन लोगों का सृजन दूसरे ढंग से हुआ है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमने अपनी मौजूदा जीवन-शैली में कुछ बुनियादी बाधाएं अपना ली हैं। वे कौन से रोड़े हैं, जिन्हें खुद आपने अपने रास्ते में डाल रखा है? इन रोड़ों को हटाने पर ही वास्तव में उन्नति का मार्ग विकसित हो सकेगा।

अबूझ पहेली...

सूत्र

जीवन के उन्नत और गहन रहस्य केवल कुछ लोगों को ही सहज रूप से ज्ञात हैं, जबकि दूसरों के लिए ये अबूझ पहेली की तरह हैं। दरअसल जिन लोगों को जीवन के गहन रहस्यों का पता है, वे हमसे अलग नहीं हैं, बल्कि उनकी समझ अलग है, वे पांचों ज्ञानेंद्रियों के पार जाकर इस जगत को महसूस करते हैं।

दूसरा पहलू

छंद शास्त्र के अनुसार, अनेक प्रकार के छंद हैं, जिन्हें लावनी या ख्याल कहते हैं। पहले ग्रामीण समाज में इसका खूब प्रचलन था।

लावनी की परंपरा अब लुप्त हो रही है

उत्तर भारत के कानपुर, देवबंद, बरेली और पीलीभीत शहर एक समय लावनी के खास केंद्र थे। ग्रामीण समाज में लावनी गायकी का बहुत प्रचलन था। इसके लिए अखाड़े जुड़ते थे। शागिर्द, वाद्ययंत्र की पूजा, मंगलाचरण, फटकेबाजी, गायन के नियम, लड़ी लड़ाना, ख्यालों की रंगतें, कारीगरी की दृष्टि, रवायतें, चित्रकाव्य, नायिका भेद, ऋतु वर्णन, रूपक, आदि की अद्भुत लावनी गायकी अब लुप्त हो गई है।

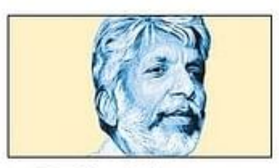

सुधीर विद्यार्थी

पीलीभीत के स्वामी नारायणानंद सरस्वती 'अख्तर' ने *लावनी का इतिहास पुस्तक* भी लिखी। *लावण्यलता* उनका एकमात्र चर्चित लावनी संग्रह है, जो 1922 में प्रकाशित हुआ था।

वर्ष 1914 में नारायणानंद जी के निधन के बाद लावनी की रंगत ही डूब गई। लावनी अब इतिहास के पन्नों में समा गई। अब शायद ही कोई लावनी गायक बचा हो।

छंद शास्त्र के अनुसार, अनेक प्रकार के छंद हैं, जिन्हें लावनी या ख्याल कहते हैं। लावनी गाने वालों के मुख्यतया दो थोक हैं, जो तुर्रा और कलगी नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता था कि इश्क लावनी का प्राण है। लावनी हिंदू-मुस्लिम एकता की प्रतीक थी। लावनी काव्य लिखने वाले अनुभवी लोग होते थे। कभी कानपुर लावनीबाजों का सबसे बड़ा अड्डा था। पीलीभीत के स्वामी नारायणानंद सरस्वती 'अख्तर' (मूल नाम लक्ष्मीनारायण तिवारी) लावनी गायन का शौक पूरा करने 1911 में कानपुर पहुंचे। वहां उनका ऐसा सम्मान हुआ कि वे उसी शहर के होकर रह गए। वह गायक ही नहीं, संपादक, समाज-सुधारक और स्वाधीनता सेनानी भी थे। उनकी *स्वदेशी गान* कविता सरकार ने जब्त कर ली थी। उन्होंने *लावनी का इतिहास* पुस्तक भी लिखी। *लावण्यलता* उनका एकमात्र चर्चित लावनी संग्रह है, जो 1922 में प्रकाशित हुआ था। मैंने सुना था कि उसकी मूल पांडुलिपि डॉ. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय', उपाचार्य गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) के पास सुरक्षित है।

लावनी गायकों के लगने वाले फड़ अब अतीत की चीजें हैं। लावनी गायकों में से एक मुखड़ा प्रस्तुत करता, तो दूसरा उसे दोहराता और फिर लावनी का विस्तार होता जाता। 1914 में नारायणानंद जी का निधन क्या हुआ कि देश भर में लावनी की रंगत ही डूब गई। लावनी अब इतिहास के पन्नों में समा गई। इक्का-दुक्का कहीं कोई लावनी गायक बचा हो, तो उसका किसी को अता-पता नहीं।

पिछले दिनों मैंने नारायणानंद जी के जन्म-स्थान पीलीभीत जनपद में अखौला गांव की यात्रा की, पर वहां उनके नाम का भी किसी को पता नहीं। कानपुर वालों ने भी उन्हें विस्मृत कर दिया और देवबंद में भी उन्हें कोई जानने वाला नहीं। लोक परंपराओं के मिटने की पीड़ा बहुत दुखद है। बरेली शहर के कालीबाड़ी में अभी कुछ समय पहले तक साल में एक बार ख्यालबाजी का अखाड़ा जुड़ता था, जिसमें दूर-दूर से लोक कलाकार हिस्सेदारी करने आते थे, पर अब वहां भी पूरी तरह सन्नाटा है।

आंकड़े

वैश्विक स्तर पर भाषा

वैश्विक स्तर पर भारतीय भाषाओं में सबसे ज्यादा हिंदी ही बोली जाती है, भाषा जानने वालों के आधार पर विश्व में उसका चौथा स्थान है।

(आंकड़े करोड़ में) | स्रोत: Languages of the World, 2019

ईश्वर के होने का सबसे बड़ा प्रमाण है कि हर व्यक्ति के पास मां है। मां अपने बेटे की जिंदगी को बदल सकती है।

ईश्वर होने का प्रमाण

अंतर्यात्रा
संकलित

अमेरिका के शहर डेट्रायट में एडवर्ड नाम का एक लड़का रहता था। उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। मां एंजिला लोगों के घरों में काम करके अपना और एडवर्ड का गुजारा करती थी। एडवर्ड शर्मीले स्वभाव का था। एक दिन स्कूल से लौटकर उसने मां को एक पत्र पकड़ाया और कहा, शिक्षक ने भेजा है। क्या लिखा है?

चिट्ठी में लिखा सच मां छिपा गई। एंजिला ने कहा, बेटा, इसमें लिखा है कि एडवर्ड बहुत होशियार है। हमारे पास इसे पढ़ाने लायक शिक्षक नहीं हैं, इसलिए इसे किसी और स्कूल में भेजें। एडवर्ड स्कूल छूटने से दुखी तो हुआ, पर उसका मन आत्मविश्वास से भर उठा।

मां ने उसका दाखिला दूसरे स्कूल में करा दिया। एडवर्ड ने खूब मेहनत से पढ़ाई की, और सफल उद्यमी बन गया। एडवर्ड की मां बीमारी के कारण एक दिन चल बसीं। एक दिन उसकी नजर एक पुरानी चिट्ठी पर पड़ी। यह वही चिट्ठी थी, जो शिक्षक ने उसे दी थी। उसमें शिक्षक ने लिखा था कि आपका बेटा पढ़ाई में कमजोर है। उसकी बुद्धि विकसित नहीं हुई है। हम इसे यहां नहीं पढ़ा सकते। तब उसे अहसास हुआ कि उसकी मां ने कैसे उसकी जिंदगी बदल दी थी। उसके मुंह से अनायास निकला, ईश्वर के होने का सबसे बड़ा प्रमाण है कि हर व्यक्ति के पास मां है।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 1 मई, 1993

राम विलास पासवान विलय के खिलाफ

पासवान विलय के खिलाफ

पटना, 1 अप्रैल (एजे)। जनता दल के उपाध्यक्ष राम विलास पासवान ने आज कहा कि उनकी पार्टी किसी भी दल के साथ विलय के पक्ष में नहीं है।

श्री पासवान ने यहां संवाददाताओं से बातचीत में कहा कि भारतीय जनता पार्टी को खासतौर से उत्तर प्रदेश में पराजित करने के लिए समान विचारों वाली पार्टियों के बीच तालमेल में किसी को आपत्ति नहीं है। उन्होंने एक बयान के जरिए स्वीकार किया कि इस दिशा में प्रयास के बावजूद हाल में बनी तेरह दलों की राष्ट्रीय एकता अभियान समिति में कोई प्रगति नहीं हुई है। इसमें जनता दल, समाजवादी पार्टी आदि शामिल हैं लेकिन वे एक

जनता दल के उपाध्यक्ष राम विलास पासवान ने कहा कि उनकी पार्टी किसी भी दल के साथ विलय के पक्ष में नहीं है। भाजपा को परास्त करने के लिए समान विचारों वाली पार्टियों के बीच तालमेल में किसी को आपत्ति नहीं है।

चुनाव प्रचार में भाषा का मुद्दा

जिस कांग्रेस ने कभी हिंदी को प्रमुख भाषा बनाने का अभियान चलाया था, अब वही भाषायी लोकतंत्र के नाम पर इसके विरोध को हवा दे रही है।

उमेश चतुर्वेदी

भाषा

चुनावी अभियान के बीच आरोप-प्रत्यारोप कोई नई बात नहीं है। जब प्रचार तमिलनाडु जैसे राज्य में हो, तो भाषा अपने आप मुद्दा बन जाती है। चुनावी अभियान ही नहीं, सामान्य दिनों में भी दक्षिण के क्षेत्रीय दल अपनी भाषायी अस्मिता का सवाल उठाने से नहीं चूकते। तमिलनाडु इस मामले में अगुआ रहा है। अक्सर ऐसे अभियानों में केंद्र सरकार और भाजपा जैसी पार्टियां ही निशाने पर रहती हैं। लेकिन भाषायी अस्मिता को चुनावी मुद्दा बनाने में उस कांग्रेस का नाम भी जुड़ गया है, जिसने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी को देश की प्रमुख भाषा बनाने का अभियान चलाया था। कोयंबटूर की चुनावी सभा में राहुल गांधी ने तमिल लोगों को समझाते हुए कहा कि प्रधानमंत्री मोदी देश में एक ही भाषा चाहते हैं। यानी प्रधानमंत्री मोदी और उनकी पार्टी तमिल के खिलाफ हैं। इस पर विवाद खड़ा होना स्वाभाविक है। भाजपा ने राहुल गांधी के इस बयान की शिकायत चुनाव आयोग से की है।

वैसे राहुल गांधी कांग्रेस के पहले नेता नहीं हैं, जिन्होंने भाषा को लेकर ऐसा बयान दिया है। केरल के तिरूवनंतपुरम सीट से चुनाव लड़ रहे शशि थरूर भी चुनाव प्रचार में भाजपा पर ऐसे आरोप लगा चुके हैं। हालांकि उनके बयान को उतनी तवज्जो नहीं मिली, क्योंकि केरल में हिंदी को लेकर तमिलनाडु जैसा माहौल नहीं रहा है। तमिलनाडु में तो हिंदी विरोध में पिछली सदी के साठ के दशक के आखिरी दिनों में आंदोलन तक हो चुका है, लेकिन केरल में ऐसा नहीं है। चाहे राहुल हों या शशि थरूर, दोनों के बयानों का एकमात्र मकसद यही है कि वे अपने वोटरों को इस आधार पर अपने समर्थन में खड़ा करें और उनका मत हासिल करें। लेकिन सवाल यह है कि क्या ऐसे विभाजनकारी बयानों की चुनाव में जरूरत है?

भारत की राजभाषा या राष्ट्रभाषा हिंदी हो, इसके खिलाफ पहला सवाल तमिलनाडु से ही उठा। तमिल विरोध के चलते संविधान के प्रावधान में हिंदी को जो हैसियत 26 जनवरी, 1965 को मिलनी चाहिए थी, नहीं मिल पाई। तमिलनाडु में हुए हिंदी विरोधी आंदोलन की वजह से हिंदी देश की आधिकारिक रूप से संपर्क भाषा भी नहीं बन पाई। लेकिन तब से लेकर अब तक कावेरी और कृष्णा नदियों में काफी पानी बह चुका है। राजनीतिक बुनियाद पर भले ही दक्षिणी राज्यों में सीमित हिंदी विरोधी मानसिकता बची हुई हो, लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अब दक्षिणी राज्यों की सोच भी बदल रही है। अगर ऐसा नहीं होता, तो टूटी-फूटी ही सही, दक्षिणी राज्यों में भी हिंदी लिखने-बोलने की कोशिश नहीं होती। हिंदी सिनेमा के गाने दक्षिणी राज्यों में पसंद नहीं किए जाते।

हिंदी की राह में सबसे बड़ी बाधा राजनीति रही है। अपने फायदे-नुकसान को ध्यान में रखते हुए वही स्थानीय लोकभावनाओं को कभी पक्ष, तो कभी विपक्ष में भड़काती है। महात्मा गांधी का सपना था कि आजाद भारत की अपनी भाषा हो, वह केंद्रीय भाषा बने। गुजरातीभाषी होते हुए भी उन्हें हिंदी में ही यह ताकत और संभावना नजर आई। लेकिन स्वाधीन भारत के राजनीतिक हस्तक्षेप के चलते हिंदी आधिकारिक रूप से केंद्रीय भाषा नहीं बन पाई।

राजनीति ने हिंदी विरोध के लिए अब नया बहाना ढूंढ़ लिया है। बहुभाषिकता और भाषायी लोकतंत्र को बनाए रखने के नाम पर उसका विरोध किया जाता है। दिलचस्प है कि केंद्रीय भाषा के तौर पर विदेशी भाषा तो स्वीकार्य हो सकती है, लेकिन अपनी हिंदी नहीं।

तमिलनाडु की सत्ताधारी पार्टी द्रमुक हिंदी की घोषित विरोधी है। जब भी उसे मौका मिलता है, हिंदी विरोध में अपनी आवाज मुखर करने से वह नहीं हिचकती। जब नई शिक्षा नीति लागू हो रही थी, तब भी उसने आरोप लगाया था कि हिंदी को थोपने की कोशिश की जा रही है। द्रमुक इंडिया गठबंधन का प्रमुख हिस्सा है। लेकिन गौर किया जाना चाहिए कि तमिलनाडु में जब प्रधानमंत्री मोदी या अमित शाह या फिर योगी आदित्यनाथ प्रचार में उतरते हैं, तो हिंदी में बोलते हैं। उनके भाषणों का तमिल में अनुवाद होता है। अगर तमिल जनता हिंदी विरोधी होती, तो वह धैर्य से इन नेताओं का भाषण नहीं सुनती। लेकिन कभी ऐसा नहीं लगा कि तमिल लोगों ने इन नेताओं के हिंदी भाषणों में अरुचि दिखाई हो। साफ है कि हिंदी को लेकर दक्षिण का लोकमानस बदल रहा है, अगर नहीं बदल रही है, तो वह है राजनीति।

हालांकि कांग्रेस तर्क दे सकती है कि एक भाषा थोपने की उसके नेताओं की बात के पीछे हिंदी विरोध नहीं है। लेकिन केंद्रीय भाषा के रूप में एक भाषा का मतलब स्वतंत्र भारत में हिंदी ही है। ऐसे बयानों से राजनीतिक फायदा जो भी हो, भाषायी मानस का नुकसान होता है।

आनंद आत्मा का स्वभाव है और सुख-दुख शरीर का

दोयम दर्जे के उत्पाद

इस पर हैरानी नहीं कि बहुराष्ट्रीय कंपनी नेस्ले के उत्पाद सेरेलेक के बारे में यह सामने आया कि विकसित देशों के मुकाबले भारत में उसमें चीनी की मात्रा कहीं ज्यादा है। चूंकि यह आरोप एक स्विस जांच एजेंसी ने लगाया है, इसलिए उसकी गंभीरता बढ़ जाती है। नेस्ले के इस दावे ने संदेह को और बढ़ा दिया है कि वह भारत में भी अपने इस उत्पाद में चीनी की मात्रा लगातार कम कर रही है। प्रश्न यह है कि विकसित देशों की तुलना में वह भारत में अपने इस उत्पाद में चीनी की मात्रा ज्यादा रख ही क्यों रही थी और वह भी तब, जब उसे शिशुओं के लिए पोषक आहार बताया जाता है? आखिर ऐसा तो है नहीं कि भारतीय ग्राहकों ने ऐसी कोई मांग की हो कि उन्हें अपने शिशुओं के लिए चीनी की अधिक मात्रा वाला सेरेलेक चाहिए? ध्यान रहे कि नेस्ले वही कंपनी है, जो अपने एक अन्य उत्पाद मैगी की गुणवत्ता को लेकर भी विवादों के घेरे में आ चुकी है। नेस्ले कोई इकलौती बहुराष्ट्रीय कंपनी नहीं, जिस पर यह आरोप लगा हो कि वह विकसित देशों की तुलना में भारत और इस जैसे अन्य देशों में अपने उत्पादों की गुणवत्ता से समझौता करती है या फिर दोयम दर्जे के उत्पाद खपाती है। इस तरह के आरोप अन्य अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर भी लगते हैं। यह चिंताजनक है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अनेक खाद्य या पेय पदार्थ वे होते हैं, जिनके बारे में यह प्रचार किया जाता है कि वे सेहत के लिए बेहद लाभकारी या पोषण से भरपूर हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खाद्य और पेय पदार्थों को लेकर यह शिकायत सुनाई ही देती रहती है कि पश्चिमी देशों में उनकी जैसी गुणवत्ता होती है, वैसी भारत में नहीं महसूस होती। यह शिकायत उन भारतीयों में आम है, जो प्रायः अमेरिका, यूरोप, कनाडा और आस्ट्रेलिया आदि जाते रहते हैं। समस्या केवल खाद्य या पेय पदार्थों, दवाओं अथवा सौंदर्य उत्पादों तक ही सीमित नहीं है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अन्य उत्पादों के बारे में भी यही शिकायत रहती है। यह एक तथ्य है कि कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने उत्पादों अथवा सेवाओं के लिए विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग-अलग मानदंड बना रखे हैं। अब इनमें इंटरनेट मीडिया कंपनियां भी शामिल हो गई हैं। यह भी किसी से छिपा नहीं कि अनेक चीनी कंपनियां भी पश्चिमी देशों के लिए अलग गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाती हैं और एशियाई एवं अफ्रीकी देशों के लिए अलग यानी कम गुणवत्ता वाले। इसका एक कारण इन देशों में गुणवत्ता संबंधी मानकों का सही तरह पालन न किया जाना है। इस समस्या से भारत भी ग्रस्त है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दोहरे मानदंडों और उनके दोयम दर्जे के उत्पादों से तभी बचा जा सकता है, जब गुणवत्ता संबंधी नियम-कानूनों पर सख्ती से अमल किया जाएगा।

सर्वसुलभ हो पेयजल

प्रदेश में पछुआ हवा के साथ तापमान लगातार ऊपर की ओर जा रहा है। बुधवार को 41.2 डिग्री सेल्सियस तापमान के साथ शेखपुरा प्रदेश का सबसे गर्म स्थान रहा। यह तपिश विशेषकर उन क्षेत्रों में ज्यादा देखने को मिल रही जहां प्रथम चरण के मतदान होने हैं। गया, औरंगाबाद, नवादा और जमुई में शुक्रवार को वोट पड़ेंगे। जाहिर है, पेयजल को लेकर प्रशासन की ओर से चिंता की जा रही है। लोकतंत्र के महापर्व में तपिश बाधा न बने इसका ध्यान रखना होगा। चुनाव आयोग की कोशिश होती है कि हर अगले चुनाव में मतदान का प्रतिशत बढ़े। इस तरह के आयोजन में व्यवस्थागत इंतजाम मायने रखते हैं। यह भी देखने के जरूरत है कि शहर-कस्बों में पेयजल के लिए की गई सार्वजनिक व्यवस्था सुचारू हैं या नहीं। अब तो प्रदेश में हर घर नल से जल की व्यवस्था है, लेकिन घर से बाहर निकलने पर सार्वजनिक व्यवस्था ही अधिकांश लोगों की प्यास बुझाती है। यह भी देखा जा रहा कि गर्मी के दिनों में आम लोगों के लिए विभिन्न संगठनों द्वारा की जाने वाली प्याऊ की व्यवस्था में कमी आई है। पहले लोग इसे पुण्य का काम मानते थे, लेकिन ऐसी मान्यता रखने वाले लोगों की संख्या में कमी आई है। कुल मिलाकर एक बड़ी जनसंख्या स्थानीय निकायों द्वारा की जाने वाली व्यवस्था पर निर्भर हो जाती है। यह भी चिंताजनक है कि आम लोगों के लिए की गई व्यवस्था देखरेख के अभाव में कुछ ही दिनों के बाद उपयोग लायक नहीं रह जाती। इसका उपयोग करने वाले भी इसे सुरक्षित रखने के प्रति संवेदनशील नहीं होते। परेशानी भी उन्हीं को होती है। एक बड़ी जनसंख्या ऐसी भी है, जो पैसे खर्च कर पानी नहीं खरीद सकती। ऐसे लोगों के लिए चौक-चौराहों पर की गई पेयजल की व्यवस्था ही जीवन है। लगातार बढ़ रहे प्रदूषण की वजह से पीने लायक पानी मिलना भी कठिन है। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि पेजयल सर्वसुलभ हो, इसे ध्यान में रखकर योजनाएं बनें और उसपर अमल हो।

पेयजल की सार्वजनिक व्यवस्था दुरुस्त होनी चाहिए, क्योंकि एक बड़ी जनसंख्या इसपर निर्भर रहती है।

कह के रहेंगे — माधव जोशी

जागरण जनमत — कल का परिणाम

क्या रणदीप सुरजेवाला के खिलाफ चुनाव आयोग की कार्रवाई से अन्य नेता सबक लेंगे?

आज का सवाल
क्या राहुल गांधी के अमेठी से चुनाव लड़ने से उत्तर भारत में कांग्रेस को लाभ मिलेगा?

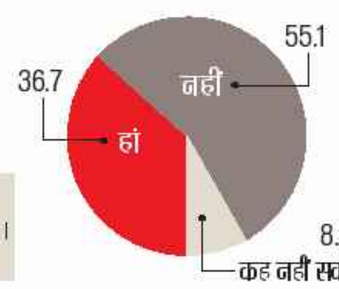

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

लोकतंत्र पर ही सवाल है वंशवाद

राज कुमार सिंह

परिवारवाद के मामले में कोई किसी से पीछे नहीं। अन्य दलों की तरह कई भाजपा नेताओं के स्वजन भी चुनाव मैदान में हैं

अवधेश राजपूत

भारतीय राजनीति में वंशवाद नया मुद्दा नहीं, पर इसका बढ़ते जाना बड़े खतरे की ओर इशारा है। राजनीतिक दल एक-दूसरे पर परिवारवाद के आरोप लगाते हैं, पर सच यह है कि कोई किसी से पीछे नहीं। पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में उनकी बेटी इंदिरा गांधी को आगे बढ़ाए जाने के साथ ही परिवारवाद का सवाल उठने लगा था। इंदिरा के प्रधानमंत्री बनने के बाद जिस तरह पहले संजय और फिर राजीव गांधी को आगे बढ़ाया गया, उसके बाद तो वंशवाद का आरोप कांग्रेस पर स्थायी रूप से चस्पा हो गया। विडंबना है कि सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस को वंशवाद में कोई बुराई नजर नहीं आती। आश्चर्य नहीं कि कांग्रेस परिवारों का समूह ज्यादा नजर आती है। सबसे बड़े लोकतंत्र की विद्रूपता देखिए कि जो दल और नेता वंशवाद के लिए कभी कांग्रेस को कोसते थे, वे अपनी वंशबेल बढ़ाने में उससे भी आगे निकल गए। क्षेत्रीय दल तो हैं ही परिवार केंद्रित, बाकी का हाल भी अलग नहीं। देश के लिए निर्णायक बताए जा रहे 2024 के लोकसभा चुनाव में भी वंशवाद सर्वत्र है।

अक्सर विकृतियों के लिए उत्तर भारत को जिम्मेदार मान लिया जाता है, पर भ्रष्टाचार की तरह वंशवाद में भी पूरा भारत एक है। उत्तर प्रदेश में स्व. मुलायम सिंह यादव के बेटे अखिलेश और पुत्रवधू डिंपल के अलावा भाई-भतीजों समेत कई अन्य स्वजन चुनाव मैदान में हैं। आकाश आनंद बसपा सुप्रीमो मायावती के उत्तराधिकारी भतीजा होने के नाते ही हैं। एनडीए में शामिल संजय निषाद और ओमप्रकाश राजभर को अपने हिस्से आई एक-एक सीट पर अपने बेटों से बेहतर उम्मीदवार नहीं मिले। भाजपा उम्मीदवार राजवीर सिंह पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह के बेटे हैं। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह के बेटे पंकज विधानसभा चुनाव लड़ते रहे हैं। बिहार में तो लालू यादव के चुनाव लड़ने वाले परिजनों की बढ़ती सूची ने आइएनडीआइए पर ही सवालिया निशान लगा दिया है। चिराग पासवान की पहचान रामविलास पासवान का बेटा होना भी है। रामविलास स्वजनों और रिश्तेदारों को राजनीति में लाने से नहीं चूके। यह कैसा सामाजिक न्याय है, जो परिवार से आगे नहीं देख पाता?

राजस्थान में भी वंशवाद में किसी ने कसर नहीं छोड़ी है। भाजपा एक परिवार में एक टिकट के तर्क के सहारे अपने परिवारवाद का बचाव करती है, लेकिन विधायक विश्वनाथ सिंह की पत्नी को राजसमंद से लोकसभा टिकट दिया गया है। जयपुर शहर में भंवरलाल शर्मा के निधन के बाद बेटी उम्मीदवार है। कभी तीसरी धारा की राजनीति के बड़े चेहरे रहे नाथूराम मिर्धा की पौत्री ज्योति मिर्धा भाजपा के टिकट पर नागौर से चुनाव मैदान में हैं तो पूर्व मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के बेटे दुष्यंत सिंह झालावाड़ से फिर चुनाव लड़ रहे हैं। कांग्रेस के कद्दावर नेता रहे शीशराम ओला के बेटे बृजेंद्र झुंझुनू से चुनाव लड़ रहे हैं तो पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के बेटे वैभव जालोर-सिरोही से मैदान में हैं। झालावाड़-बारा सीट पर पूर्व मंत्री प्रमोद जैन की पत्नी उर्मिला उम्मीदवार हैं। मध्य प्रदेश में पूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री कमल नाथ के बेटे नकुल नाथ फिर छिंदवाड़ा से चुनाव मैदान में हैं तो सीधी से पूर्व मंत्री इंद्रजीत पटेल के बेटे कमलेश्वर चुनाव लड़ रहे हैं। विधायक अभय मिश्रा की पत्नी नीलम रीवा से उम्मीदवार हैं। हिमाचल प्रदेश के मंडी में कांग्रेस ने प्रदेश अध्यक्ष प्रतिभा सिंह के बेटे विक्रमादित्य को उतारा है। हमीरपुर से भाजपा प्रत्याशी अनुराग ठाकुर पूर्व मुख्यमंत्री प्रेम कुमार धूमल के बेटे हैं तो चंडीगढ़ से उम्मीदवार संजय टंडन भी पंजाब के पूर्व मंत्री बलरामजी दास टंडन के बेटे हैं। दिल्ली में बांसुरी स्वराज को सुषमा स्वराज की बेटी के नाते ही भाजपा का टिकट मिला है। हरियाणा में रतनलाल कटारिया के निधन के बाद उनकी पत्नी बंतो को अंबाला से टिकट दिया गया।

बंगाल में मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के उत्तराधिकारी माने जा रहे भतीजे अभिषेक डायमंड हार्बर से चुनाव लड़ रहे हैं तो सुवेंदु अधिकारी के भाई सौमेंदु अधिकारी कांथी से भाजपा उम्मीदवार हैं। महाराष्ट्र में खुद वंशवाद के सहारे आगे आए उप मुख्यमंत्री अजित पवार अब पत्नी सुनेत्रा को भी चुनाव लड़ाने जा रहे हैं तो मुख्यमंत्री एकनाथ शिंदे का बेटा भी फिर चुनाव लड़ रहा है। भाजपा उम्मीदवारों में पीयूष गोयल, रक्षा खडसे, पंकजा मुंडे, सुजय विखे पाटिल समेत अनेक नाम परिवारवाद की ही देन हैं।

कर्नाटक में कांग्रेस ने कम से कम नौ मंत्रियों समेत दर्जन भर नेताओं के रिश्तेदारों को टिकट दिया है, जिसे मुख्यमंत्री सिद्धरमैया जनता की मांग बता रहे हैं। मल्लिकार्जुन खरगे अपने बेटे प्रियांक के कर्नाटक में मंत्री होने के बावजूद दामाद राधाकृष्ण को गुलबर्गा से चुनाव लड़ाने का मोह नहीं छोड़ पाए। उप मुख्यमंत्री डीके शिवकुमार के भाई सुरेश बेंगलुरु ग्रामीण से चुनाव मैदान में हैं। भाजपा के वरिष्ठ नेता केएस ईश्वरप्पा ने अपने बेटे को टिकट न मिलने पर पूर्व मुख्यमंत्री बीएस येदियुरप्पा के बेटे बीवाई राघवेंद्र के विरुद्ध निर्दलीय चुनाव लड़ने का एलान कर दिया है। येदियुरप्पा के दूसरे बेटे बीवाई विजयेंद्र विधायक के साथ-साथ कर्नाटक भाजपा अध्यक्ष भी हैं। भाजपा ने दावणगेरे से पूर्व केंद्रीय मंत्री जीएम सिद्धेश्वर का टिकट काट कर उनकी पत्नी गायत्री को दे दिया। लोकसभा चुनाव लड़ रहे पूर्व मुख्यमंत्री बसवराज बोम्मई भी पूर्व मुख्यमंत्री एसआर बोम्मई के बेटे हैं। पूर्व प्रधानमंत्री एचडी देवेगौड़ा के बेटे पूर्व मुख्यमंत्री एचडी कुमारस्वामी और पौत्र प्राज्वल रेवण्णा अपनी पार्टी जद (एस) के उम्मीदवार हैं, तो बेंगलुरु ग्रामीण सीट पर देवेगौड़ा के दामाद सीएन मंजूनाथ भाजपा के। यह सूची लंबी है।

वंशवाद के पोषक तर्क देते हैं कि आखिरकार तो जनता ही चुनती है, पर वे यह नहीं बताते कि दशकों तक काम करने वाले कार्यकर्ताओं से पद और टिकट की बाजी नेता का परिजन कैसे मार ले जाता है? यह अध्ययन वंशवाद को बेनकाब करनेवाला है कि 2019 के लोकसभा चुनाव में 30 प्रतिशत सदस्य राजनीतिक परिवारों से रहे। दलों और राज्यों की दृष्टि से भी ज्यादा फर्क नहीं दिखता। मसलन कांग्रेस ने 31 प्रतिशत टिकट वंशवाद के चलते दिए, तो भाजपा में यह प्रतिशत 21 रहा। महिला सशक्तीकरण के नाम पर भी राजनीतिक परिवारों की महिलाएं ही लाभार्थी बन रही हैं। सपा, टीडीपी, द्रमुक और बीआरएस जैसे दलों में तो सौ प्रतिशत ऐसा ही होता है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

response@jagran.com

वादों की परख करने वाले चुनाव

प्रो. निरंजन कुमार

मतदाता अब यह अच्छे से देख रहे कि किसमें अपने वादों को पूरा करने की कितनी क्षमता है?

जनता देख रही किसमें कितना है दम ● फाइल

लोकसभा चुनाव भारतीय लोकतंत्र का महापर्व है, पर इस बार का आम चुनाव सामान्य चुनाव नहीं है। यह जनता द्वारा अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने की दिशा में एक निर्णायक मोड़ भी है। लगभग 97 करोड़ मतदाता अपना और देश का भाग्य तय करेंगे। इसमें 18 से 35 आयु वालों की संख्या 60 करोड़ से अधिक है और पहली बार वाले मतदाता बने युवा 1.8 करोड़ हैं। यह जानना दिलचस्प होगा कि खासतौर से 35 से कम आयु वाले युवाओं की क्या आकांक्षाएं हैं? 'अमेरिकी ड्रीम' की ही तरह आज भारतीय युवाओं का भी अपना एक 'इंडियन ड्रीम' है।

लोकतंत्र 'जनता के द्वारा' और 'जनता की सरकार' तो है, पर सबसे ऊपर यह 'जनता के लिए सरकार' है। यानी जनता के सपनों को पूरा करने के लिए सरकार है। मोबाइल फोन, इंटरनेट मीडिया आदि की वजह से आज का भारतीय युवा सूचनाओं से लैस और दुनिया में हो रहे सामाजिक-आर्थिक प्रगति से परिचित है। वह भी विकसित दुनिया खासतौर से संसार के रोल माडल कहलाने वाले देश अमेरिका के युवाओं के साथ कदमताल करना चाहता है। 1931 में जेम्स ट्रूस्लो एडम्स ने अपनी पुस्तक 'द एपिक आफ अमेरिका' में अमेरिकन ड्रीम की परिभाषा देते हुए कहा था, 'चाहे किसी भी सामाजिक वर्ग या वंश-परिवार या परिस्थितियों से आए हों, हर अमेरिकी के लिए अपनी क्षमता के अनुरूप सफलता, समृद्धि और बेहतर जीवन के अवसर होने चाहिए।' 'अमेरिकी ड्रीम' की ही तरह आज भारतीय युवा भी अपने लिए ऐसी राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की कल्पना करता है, जहां आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उसे ऊर्ध्व गतिशीलता का समुचित अवसर मिल सके। वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और विकसित होते भारत में अपने लिए अवसर देख रहा है और तेजी से हो रहे आर्थिक-सामाजिक विकास में अपनी हिस्सेदारी भी चाहता है। देश के विभिन्न हिस्सों के विद्यार्थियों, श्रमिकों-कामगारों, आफिस-माल में काम करने वालों और निम्न मध्यम वर्ग एवं मध्य मध्यम वर्ग के लोगों में भारत के भविष्य को लेकर आशा का भाव है। वे अपनी स्थिति से पूर्ण संतुष्ट तो नहीं हैं, लेकिन बेहतर भविष्य को लेकर आशान्वित हैं और इसीलिए जाति, क्षेत्र, मजहब आदि से परे हटकर भी सोच रहे हैं। इसका एक कारण तो यह है कि बीते दस वर्षों में 10वीं बड़ी अर्थव्यवस्था वाला भारत आज पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है और 2027 तक तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने वाला है। दूसरा कारण देश का रोटी, कपड़ा और मकान के मुद्दों से बाहर निकल आना है।

ग्लोबल इकोनमी में उभरते नए भारत में युवा वर्ग अपनी पर्याप्त हिस्सेदारी देख रहा है। आज जहां मध्यम या निम्न मध्यम वर्ग के लिए अवसर हैं, वहीं गरीबों के लिए भी संभावनाओं के द्वार खुल रहे हैं। विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि पिछले दस वर्षों में महिलाओं के साथ इस वर्ग के लोगों की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है। नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार भारत में गरीबी दर वित्त वर्ष 2013-14 में 29.17 प्रतिशत से घटकर 2022-23 में 11.28 प्रतिशत रह गई है। इस वर्ग में 'दो जून की रोटी' की आस से आगे भी बेहतर जीवन अर्थात 'इंडियन ड्रीम' का भाव जागने लगा है, लेकिन प्राचीन सभ्यता वाले भारत का सपना अमेरिकी सपने से कुछ विशिष्ट है। अमेरिकी आकांक्षा केवल भौतिक उपलब्धि तक सीमित है। भारतीय आकांक्षा में प्राचीन विरासत और सांस्कृतिक उपलब्धि को लेकर भी सजगता है। वास्तव में 'ग्रेट इंडियन ड्रीम' का आर्थिक और राजनीतिक पक्ष तो है ही, एक सांस्कृतिक पक्ष भी है और इसीलिए अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण और सनातन धर्म जैसे विषय भी चुनावी भाषणों में सुनाई दे रहे हैं। आज का भारत सदियों की गुलामी के बाद अपनी विरासत के प्रति सजग है और वह उसे संजोए रखना चाहता है। इस 'ग्रेट इंडियन ड्रीम' को साकार करने के लिए युवा जब राजनीतिक नेतृत्व की तरफ देखता है तो उसके पास दो ही विकल्प हैं- एक तरफ भाजपा के नेतृत्व वाला एनडीए और दूसरी ओर कांग्रेस के नेतृत्व वाला आइएनडीआइए। दोनों ने अपने-अपने घोषणा पत्र पेश कर दिए हैं और उनके नेताओं की ओर से जनता को लुभाने के लिए तरह-तरह के वादे भी किए जा रहे हैं।

जनता विभिन्न दलों के वादों की पड़ताल इस आधार पर भी कर रही है कि किसने सत्ता में रहते समय क्या किया और कौन अपने वादों को पूरा करने की क्षमता रखता है? चूंकि पक्ष-विपक्ष का नेतृत्व करने वाले दोनों ही गठबंधनों के दल सत्ता में रह चुके हैं, इसलिए लोगों को उनकी नीतियों और उन पर अमल कर सकने की क्षमता एवं प्रतिबद्धता का भी अनुभव है। भारतीय युवा की यह अपेक्षा है कि वह इसलिए अपने सपने को साकार करने से वंचित न रह जाए कि वह अमुक जाति या मजहब या क्षेत्र से नहीं है। निःसंदेह रोजगार एक मुद्दा है, लेकिन यह हर कोई जानता है कि सरकारी नौकरियां सीमित हैं। किसी भी देश और यहां तक कि विकसित देशों तक में रोजगार सरकारी नौकरियों के सहारे पूरा नहीं होता। इसे आज के युवा भी समझते हैं और इसीलिए वे यह देख रहे हैं कि देश में कहां-किस तरह के उद्योग-धंधे विकसित हो रहे हैं? अब एक बड़ी संख्या में युवा नौकरी मांगने के बजाय नौकरी देने वाले बन रहे हैं या फिर बनना चाहते हैं। मतदाता और खासतौर से युवा वोटर किस आधार पर वोट करेंगे, इसकी एक झलक पहले चरण के मतदान में भले ही दिख जाए, लेकिन अंतिम परिणाम तो चार जून को ही पता चल सकेगा।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में सीनियर प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

प्राणबल

किसी कार्य को पूर्ण करने के लिए बल की जरूरत होती है। बल के अभाव में कोई कार्य संभव नहीं होता। बल को ऊर्जा, शक्ति, पावर के नाम से भी जाना जाता है। मनुष्य को निज जीवन में चार बल जरूरी हैं। वे हैं-शरीरबल, मनोबल, आत्मबल और ब्रह्मबल। इनकी क्षमता कार्य के अनुसार अलग-अलग होती है, लेकिन इनके अलावा एक प्राणबल भी होता है। प्राणबल से संपन्न व्यक्ति प्राणवान होते हैं। वे असामान्य, असाधारण, देवमानव स्तर के कर्मठ एवं पुरुषार्थी होते हैं। प्राणबल में असीमित क्षमता होती है।

प्रायः हम किसी भी शुभ अवसर पर शुभ कार्य को गति देने के लिए संकल्प लेते हैं। सकल्प का कोई विकल्प नहीं। संकल्प लेते ही हमसे ब्रह्म की शक्ति जुड़ जाती है। प्राणबल से संपन्न प्राणवान व्यक्ति ही शुभ संकल्प ले सकता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा संकल्प लेने के पश्चात कार्य जरूर पूरा होता है, क्योंकि प्रण लेने वाले प्राणवान व्यक्ति का तन-मन लक्ष्य को पूर्ण करने में अग्रसर हो जाता है। वहीं जब कार्य के पूरा होने में संदेह होता है उस अवस्था में मनुष्य का मन नकारात्मकता से भरा होता है। प्रभु श्रीराम ने वनगमन के समय जंगल में हड्डियों का ढेर देखकर प्रण लिया था कि असुरों का मैं नाश कर दूंगा, जो संसार में विनाश का कार्य कर रहे हैं। तभी धरती पर सुख-शांति आएगी।

प्राणबल संपन्न व्यक्ति से देश एवं समाज के हित की आशा करना मंगलकारी है। वे त्यागी, बलिदानी, संस्कृति के महानायक होते हैं। प्राणहीन से सहयोग के बारे में सोचना अपना समय निरर्थक गंवाना है। प्रायः देखते हैं कि धर्म विशेषज्ञ प्राणबल की क्षमता की वृद्धि के लिए प्राणायाम, जप, तप, सत्संग, धर्म की आध्यात्मिक क्रिया पर विशेष जोर देते हैं। महात्मा गांधी शरीर से देखने में दुर्बल थे, पर प्राणबल संपन्न होने के करण कठिन से कठिन कार्य को भी क्षणभर में पूर्ण कर लेते थे। प्राणबल संपन्न व्यक्ति ही इस धरती पर लंबे समय तक जीवित होते हैं। प्राणहीन तो मुर्दा तुल्य होते हैं।

मुकेश ऋषि

पाठकनामा

pathaknama@pat.jagran.com

शोध कार्य में सहयोग करे निजी क्षेत्र

'शिक्षा पर और अधिक खर्च आवश्यक' शीर्षक से लिखे आलेख में डा. ब्रजेश कुमार तिवारी ने यह तथ्य उद्घाटित किया है कि चीन, जापान, दक्षिण कोरिया आदि की तुलना में भारत शिक्षा पर अपेक्षित बजट खर्च नहीं कर रहा है। बहरहाल यह देश के लिए गौरव की बात है कि लंदन की उच्चशिक्षा विश्लेषण कंपनी क्यूएस द्वारा जारी ताजा विश्व रैंकिंग में 59 भारतीय उच्च शिक्षण संस्थाओं ने जगह बनाई है। उसने जेएनयू को दुनिया का बीसवां उत्कृष्ट संस्थान बताया है। इसी तरह आइआइएम और आइआइटी को भी विश्व के बेहतरीन संस्थानों में जगह मिली है। रिपोर्ट की मानें तो भारत तेजी से शोध केंद्र विकसित करने वाला चौथा देश बन गया है। अकादमिक शोध पत्र तैयार करने के मामले में भारत अब ब्रिटेन को पीछे छोड़ने की स्थिति में आ गया है। यदि भारत को शोध के क्षेत्र में विश्व में अपनी रैंकिंग को और सुधारना है तो देश के निजी क्षेत्र को शोध कार्यों को बढ़ावा देने पर ज्यादा योगदान देना होगा। एक जानकारी के अनुसार भारत में शोध कार्य पर 50 प्रतिशत से अधिक खर्च सरकार या सरकारी संस्थाएं करती हैं जबकि अमेरिका में यह आंकड़ा महज 10 प्रतिशत और चीन में 16 प्रतिशत है। वहां शोध कार्य का शेष खर्च निजी क्षेत्र ही उठाता है। यदि भारत में निजी क्षेत्र का शोध में योगदान बढ़े तो देश में भी शोध का स्तर बेहतर हो सकता है। भारत की एक और विशेषता है कि यहां विज्ञान पढ़ने में छात्रों की विशेष रुचि है। भारत एक मात्र देश है जहां विज्ञान, तकनीकी और गणित आदि विषयों को प्रमुखता से पढ़ाया जाता है जबकि अमेरिका जैसे प्रमुख बड़े देशों में ये विषय बड़े स्तर पर नहीं पढ़ाए जाते हैं।

डा. प्रदीप कुमार संघवी, विज्ञानी, झाबुआ, मध्य प्रदेश

छोटी नदियों को बचाना होगा

ग्रीष्म ऋतु की शुरूआत में ही बढ़ती तपिश के साथ भू जल स्तर में कमी दिखने लगी है। कुछ ऐसी नदियां, जो बड़ी नदियों के स्त्रोत से निकली हुईं थीं, वह गत कई वर्षों से नाला बन गईं हैं। ऐसे में इन नदियों की उड़ाही की आवश्यकता है। अधिकांश नदियों के बहाव क्षेत्र का अतिक्रमण कर घर बना लिए गए हैं, यह क्रम अब भी जारी है। इस पर प्रभावी कार्रवाई की आवश्यकता है। सरकार की हर घर नल जल योजना के फलस्वरूप आम लोग पेयजल की कमी से उतने परेशान नहीं हैं, परंतु खेतों की सिंचाई एवं पशुओं-पक्षियों की प्यास बुझाने एवं स्नान करने के लिए पानी की कमी विकराल रूप ले रही है। बड़ी नदियों के जलस्त्रोत से बनीं छोटी नदियों की तत्काल उड़ाही हो।

आनंद कुमार पांडेय, रोसड़ा, समस्तीपुर।

श्रीराम के आदर्श अपनाएं

श्रीराम के संदेश का जन-जन तक पहुंचना बहुत महत्वपूर्ण है। उनके जीवन व आदर्शों को समझना तथा उन्हें अपनाना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। श्रीराम का धर्म, सत्य एवं न्याय के प्रति समर्पण सभी को प्रेरित करता है। रामनवमी के अवसर पर हमें उनके आदर्शों को याद करना चाहिए और उनके मार्ग पर चलने का प्रयास करना चाहिए। इससे हम न केवल अपने लिए बल्कि समाज के लिए भी एक उत्तम उदाहरण स्थापित कर सकेंगे।

अमरजीत कुमार, चिरैला, औरंगाबाद

समान नागरिक संहिता अनिवार्य

संपादकीय आलेख 'समान संहिता की जमीन' (18 अप्रैल) पढ़ा। भारत विविधताओं का देश है। इस देश में कई धर्म, जाति, संप्रदाय के लोग भाईचारे के साथ रहते हैं। इस देश में विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोली जाती है, क्षेत्र के अनुसार खानपान में भी विभिन्नता पाई जाती है, वेशभूषा भी अलग-अलग है, इन सब के बावजूद सभी भारतीय एक देश के नागरिक हैं। विभिन्न जाति एवं धर्म के लोगों के बीच अलग-अलग परंपराएं, नियम, कुप्रथाएं होने की वजह से अक्सर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, इसलिए संविधान निर्माताओं ने देश में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल दिया था। देश में विवाह, संबंध विच्छेद, उत्तराधिकार आदि मामलों में 'एक देश-एक विधान' लागू करने की आवश्यकता है। समान नागरिक संहिता भाजपा का प्रमुख चुनावी मुद्दा है। भाजपा नेतृत्व की केंद्र सरकार ने संसद से समान नागरिक संहिता पारित कर दिया है, लेकिन अभी तक केवल उत्तराखंड सरकार ने उसे लागू किया है। इस कानून को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने की आवश्यकता है, लेकिन कई विपक्षी दल तुष्टिकरण नीति की वजह से इस कानून का विरोध कर रहे हैं। समान संहिता लागू हो गई तो पंथ व धर्म के नाम पर राजनीति करने वालों की दुकानें बंद हो जाएंगी। प्रधानमंत्री द्वारा चुनावी भाषण के दौरान समान नागरिक संहिता लागू करने पर बल देना स्वागत योग्य है। समान नागरिक संहिता एक अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है।

ई हिमांशु शेखर, केसपा, गया।

पोस्ट

यूएई के दुबई में बाढ़ इसलिए आई, क्योंकि उसने बादलों से जबरन बारिश के लिए क्लाउड सीडिंग कराई थी। कुदरत को न छेड़ें, नहीं तो वह आपको कहीं का नहीं छोड़ेगी। मंजित ठाकुर@manjit2007

जनतंत्र में कोई क्या खाए, पहने और पढ़े और किसमें आस्था रखे यह उसकी मर्जी होनी चाहिए, पर सरकार के खर्च पर ऐसा कुछ नहीं पढ़ाया जाना चाहिए, जो देश के हित में न हो। कितने बच्चे पैदा करें या न करें, यह आप पर है, पर हक का दूसरा पहलू दायित्व है। सो उनकी शिक्षा और रोजगार का जिम्मा भी आपका है।

शिवकांत@shivkant

जिस किसी व्यक्ति को भी अपने लोकप्रिय होने का बहुत गुमान हो उसे जीवन में एक बार चुनाव जरूर लड़ना चाहिए।

राजीव रंजन@rajeevranjanMKH

संविधान बदलना और संविधान में समय के साथ संशोधन करना, दोनों में जमीन और आसमान का अंतर है। संविधान बदलना संघ या भाजपा के एजेंडे में कभी नहीं रहा। संशोधन हर सरकार आवश्यकता अनुरूप आगे करती रहेगी। कुछ प्रत्याशियों की बयानबाजी के कारण पीएम मोदी को डैमेज कंट्रोल करना पड़ रहा।

नवनीत मिश्रा@navneetmishra99

जनपथ

जिम्मेदारी 'लोक' की लोग करें मतदान,
मत देकर ही सोइए जी भर चद्दर तान।
जी भर चद्दर तान चुनो ऐसा प्रत्याशी,
जो संसद में बैठ न लेता रहे उबासी।
लाइन में लग जायँ सुबह उठकर नर-नारी,
जाकर बटन दबाय निभाएं जिम्मेदारी!

- ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व.पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान सम्पादक- स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन- महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान सम्पादक -संजय गुप्त

जागरण प्रकाशन लिमिटेड के लिये आनन्द त्रिपाठी द्वारा दैनिक जागरण प्रेस C-5, C-6 & 15 इंडस्ट्रियल एरिया, पाटलिपुत्रा, पटना - 800013 से प्रकाशित एवं मुद्रित, सम्पादक (बिहार/प. बंगाल)-विष्णु प्रकाश त्रिपाठी, स्थानीय सम्पादक - आलोक मिश्रा * दूरभाष : 0612-2277071, 2277072, 2277073
E.mail : patna@pat.jagran.com, R.N.I. NO. BIHHIN/2000/03097* इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर बी.एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी पटना जीपीओ रजि.नं. R-10/NP-18/14-16 समस्त विवाद पटना न्यायालय के अधीन ही होंगे। वर्ष 25 अंक 8

****

भारत का समर्थन

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता पर भारत की दावेदारी दिनोंदिन मजबूत होती जा रही है। अमेरिका ने फिर एक बार भारत की स्थायी सदस्यता के अनुकूल टिप्पणी की है। दरअसल, दुनिया के सबसे अमीर लोगों में शुमार टेस्ला के सीईओ एलन मस्क ने यह मामला उठाया था और उस पर पूछे गए सवाल का अमेरिकी विदेश विभाग ने जवाब दिया है। एक प्रेस वार्ता के दौरान, अमेरिकी विदेश विभाग के प्रधान उप-प्रवक्ता वेदांत पटेल ने कहा है कि राष्ट्रपति ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपनी टिप्पणियों में पहले भी इस बारे में बात की है और हम निश्चित रूप से सुरक्षा परिषद सहित संयुक्त राष्ट्र संस्था में सुधारों का समर्थन करते हैं। अमेरिका का यह कूटनीतिक जवाब भारत के साथ-साथ एलन मस्क को भी खुश करने की दिशा में अगर दिया गया है, तो भी इसके महत्व को समझा जा सकता है।

अमेरिका का हर बयान सोची-समझी रणनीति के तहत होता है और चूंकि भारत सरकार आने वाले दिनों में एलन मस्क के लिए देश के दरवाजे खोलने वाली है, इसलिए भी एलन मस्क और अमेरिका के विचारों की बयार भारत की दिशा में बह रही है। यह खुशी की बात जरूर है, पर ऐसा नहीं कि इससे भारतीय लोग अभिभूत हो जाएं। भारत में जब टेस्ला के उत्पादों की बिक्री बढ़ेगी, तब जाहिर है, मस्क के साथ ही अमेरिका फायदे में रहेगा। विगत तीन महीने से एलन मस्क को यह एहसास हुआ है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत का न होना बेतुका है। भारत सबसे बड़ी आबादी वाला लोकतंत्र है और उसे अफ्रीका महादेश के साथ सुरक्षा परिषद में शामिल किया जाना चाहिए। ध्यान रहे, सुरक्षा परिषद में अमेरिका, रूस, फ्रांस, इंग्लैंड और चीन स्थायी सदस्य हैं। यह अक्सर कहा जाता है कि भारत ने उदारतावश अपनी जगह चीन को सौंप दी थी, पर आज की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि चीन ही सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता का सबसे बड़ा विरोधी है। फ्रांस, अमेरिका, रूस तो समय-समय पर भारत का पक्ष लेते रहे हैं, पर इन देशों ने भी कोई ठोस पहल नहीं की है। कथनी और करनी में जमीन-आसमान का फर्क है। जैसे ही सुरक्षा परिषद के विस्तार की बात चलती है, अनेक देशों के नामों की चर्चा शुरू हो जाती है, ऐसा जान-बूझकर किया जाता है, ताकि विचारों की खींचातानी में निर्णय टल जाए।

सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता के प्रश्न पर अमेरिका का जवाब भारत के साथ-साथ एलन मस्क को खुश करने के लिए यदि दिया गया है, तो भी महत्वपूर्ण है।

यह बात दुनिया का हरेक देश जानता है कि संयुक्त राष्ट्र धीरे-धीरे अप्रभावी होता जा रहा है। आक्रामक देशों के सामने नख-दंत हीन होता जा रहा है। यह देखने वाली बात है कि ज्यादातर देशों में तानाशाह जैसे नेता सत्ता में हैं, जो साम्राज्यवादी मनसूबे पाले हुए हैं। सुरक्षा परिषद के दो स्थायी सदस्यों रूस और चीन की विस्तारवादी नीतियां तो संयुक्त राष्ट्र के कारगर होने में अब सबसे बड़ी बाधा हैं। जिस चीन की नजरें भारतीय जमीन पर गड़ी हैं, वह भला क्यों चाहेगा कि भारत विश्व स्तर पर ज्यादा रसूखदार हो जाए? मगर यह समय का तकाजा है कि भारत को दुनिया में आज नहीं, तो कल उचित स्थान देना ही पड़ेगा। जैसे एलन मस्क ने भारत के पक्ष में मुंह खोला है, ठीक उसी तरह से भारतीय भूमि या विशाल बाजार से भरपूर लाभान्वित होने वाले देश और दुनिया के अन्य उद्यमियों को भी भारत की पैरोकारी मजबूती से करनी चाहिए। हमारे विदेश मंत्री एस जयशंकर का यह कहना बहुत सही है कि 'दुनिया आसानी से और उदारता से चीजें नहीं देती है; कभी-कभी आपको उन्हें लेना पड़ता है।'

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 19 अप्रैल, 1949

जांच या लीपापोती

दक्षिण अफ्रीका में पिछली जनवरी में भारतीय विरोधी भयंकर उपद्रव हुए थे जिनमें कहते हैं १४२ व्यक्ति जान से गये और एक हजार से अधिक घायल हुए। सम्पत्ति की हानि कई लाख पौण्ड हुई बताई जाती है। इन उपद्रवों की जांच करने के लिए दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने तीन न्यायाधीशों का एक जांच कमीशन नियुक्त किया था। इस कमीशन ने जांच का जो तरीका अख्तियार किया, वह असाधारण और विचित्र था। कमीशन के अध्यक्ष ने प्रारम्भ में ही यह फैसला दे दिया था कि उनके सामने गवाही देने आने वालों से कोई जिरह नहीं की जा सकेगी, जबकि ऐसी जांच-पड़ताल में जिरह सत्य को सामने लाने में बहुत सहायक होती है। किन्तु शायद सत्य को सामने लाना उतना अभीष्ट न था, जितना कि घटनाओं पर लीपापोती करना। जांच कमीशन के इस रुख के कारण दक्षिण अफ्रीका की संस्थाओं की ओर से जो वकील जांच कार्य में सहायता देने आगे आये थे, उन्हें उसका बहिष्कार करना पड़ा। अतः अधिक से अधिक यह एकपक्षीय जांच हुई और एकपक्षीय जांच किस किस्म की हो सकती है और उसके निष्कर्ष कितने विश्वसनीय माने जा सकते हैं, यह आसानी से समझा जा सकता है।

जांच कमीशन ने दबी जबान में यह स्वीकार किया है कि यूरोपियनों ने दक्षिण अफ्रीकियों को भारतीयों के विरुद्ध भड़काया अथवा उकसाया था। किन्तु उसकी राय में ऐसे यूरोपियनों की संख्या बहुत थोड़ी थी। आमतौर पर दक्षिण अफ्रीका के गोरों का रवैया भारतीय-विरोधी है। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अस्तित्व को वे चुनौती समझते हैं और उनसे किसी न किसी तरह अपना पिण्ड छुड़ाने की इच्छा रखते हैं। इसलिए उपद्रवियों के साथ उनकी सहानुभूति एक स्वाभाविक बात माननी होगी। किन्तु उपद्रवकारियों को थोड़े लोगों ने भड़काया अथवा बहुत ने, प्रश्न यह है कि जिन्होंने भी ऐसा जघन्य अपराध किया, उन यूरोपियनों को उचित दण्ड देने के लिए दक्षिण अफ्रीका की सरकार तैयार है अथवा नहीं? क्या वह ऐसा करने का साहस कर सकती है? जांच कमीशन ने दक्षिण अफ्रीका की पुलिस का भी बचाव किया है। उसका कहना है कि उपद्रव अचानक हुए और पुलिस को उनकी कोई पूर्व कल्पना नहीं थी। इसलिए वह उपद्रवों को तत्काल दबा न सकी।

सियासत में सर्वेक्षणों पर कितना भरोसा

यहां स्कैन करें

संजय कुमार | प्रोफेसर, सीएसडीएस

सर्वेक्षणों की गुणवत्ता के लिए प्रयास किए जा सकते हैं। हार-जीत वाले सारे सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध भले न लगाया जाए, पर पारदर्शिता को अवश्य अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

चुनावी मौसम में सर्वेक्षणों की बहार आ जाती है और यह सवाल पैदा हो जाता है कि चुनावी सर्वे पर लोगों को कितना भरोसा करना चाहिए? यहां सवाल यह भी है कि भरोसा आप किसे कहते हैं? अगर आप इन चुनावी सर्वेक्षणों से यह अनुमान लगाना चाहते हैं कि 4 जून को जब वोटों की गिनती होगी, तब कौन-सी पार्टी जीतेगी और कौन-सी पार्टी नंबर दो या तीन रहेगी, तो आप गलत हैं। वास्तव में, ऐसे सर्वे मौसम के पूर्वानुमान की तरह ही हैं। अनुमान अतीत और वर्तमान की स्थितियों को देखते हुए लगाया जाता है, जरूरी नहीं कि मौसम का पूर्वानुमान हमेशा सही साबित हो, ठीक इसी तरह से जरूरी नहीं कि चुनावी सर्वेक्षण द्वारा लगाया गया अनुमान भी हर बार सही साबित हो। अतः सर्वे को पढ़ने-जानने का सही तरीका समझना चाहिए।

कोई भी सर्वेक्षण अपनी सीमा में एक अनुमान भर लगा सकता है, उसका सौ फीसदी सही होना जरूरी नहीं है। यही मानना चाहिए कि जिस वक्त सर्वे किया गया, उस वक्त लोगों की प्राथमिकताएं क्या थीं और जरूरत के हिसाब से प्राथमिकताएं बदलती रहती हैं।

पहले के चुनावी सर्वे कुछ ज्यादा सटीक होते थे, क्योंकि पहले सर्वे करने वाले कम लोग होते थे और वे सर्वे की तकनीक-तरीकों पर ज्यादा ध्यान देते थे। जैसे-जैसे सर्वेक्षणों की मांग बढ़ने लगी, वैसे-वैसे बहुत सारे लोग सर्वेक्षण के क्षेत्र में आ गए। बहुत से सर्वेक्षणकर्ता यह भी नहीं जानते कि सर्वे कहते किसको हैं? सैंपलिंग कैसे की जाती है, प्रश्नपत्र कैसे बनाया जाए, साक्षात्कार कैसे लें, आंकड़े कैसे एकत्र करें, तो अब बहुत शॉर्टकट आ गए हैं। तमाम तरह के ऐसे लोग भी आ गए हैं, जो सर्वे की सही विधि नहीं जानते और न उसे समझने की कोशिश करते हैं। इसी वजह से आजकल ढेर सारे सर्वे प्रकाशित होते हैं और उनमें से बहुत से बहुत हल्के होते हैं।

यहां मैं वाहन चालन का उदाहरण दे सकता हूं। 30 साल पहले दिल्ली में गाड़ी चलाने वालों की संख्या कम थी। गाड़ी वही लोग चलाते थे, जो विधिवत इसका प्रशिक्षण लेकर आते थे। लोग मानते थे कि जब तक मैं सही ढंग से चलाना सीख न लूं, गाड़ी लेकर सड़क पर नहीं उतर सकता। जब टैक्सी की मांग बढ़ी, चालकों की मांग बढ़ी, तब ऐसे लोग भी वाहन चलाने उतर आए, जो ठीक से प्रशिक्षित नहीं हैं। जब दुनिया में अप्रशिक्षित लोग बड़ी संख्या में आ जाते हैं, तब सर्वेक्षण हो या सड़क, दुर्घटना की गुंजाइश बढ़ जाती है।

इधर कुछ सर्वे में तो जोड़-घटाव के स्तर पर भी त्रुटि देखी गई है, स्थिति हास्यास्पद बनी है और सबसे बड़ी बात कि इससे सर्वेक्षण की विश्वसनीयता प्रभावित हुई है। जब आप सर्वेक्षण की तकनीक से वाकिफ ही नहीं हैं, तो ऐसी गलतियों को आप रोक नहीं सकते।

हां, सर्वे को 'मैनेज' किया जा सकता है। मतलब, आंकड़ों में उलट-फेर किया जा सकता है। अपने देश में अक्सर हम चर्चा करते रहे हैं कि कॉलेज न भी जाएं, तब भी मनचाही डिग्री मिल जाती है। आप कॉलेज में हाजिरी न भी लगाएं, तो आपकी उपस्थिति को 'मैनेज' किया जा सकता है। आंकड़ों या सर्वेक्षण में भी किसी राजनीतिक पार्टी के पक्ष या विरोध में हेरफेर संभव है। इन्हीं वजहों से लोगों की सर्वेक्षण पर आस्था कम हुई है। यह सच है कि लोग सर्वेक्षणों को देखना-पढ़ना चाहते हैं, पर उन्हें पूरा भरोसा नहीं होता है।

हम अभी भूले नहीं हैं कि साल 2004 के लोकसभा चुनाव परिणाम से पहले हुए सर्वेक्षणों का मजाक उड़ाया गया था। चुनाव पूर्व सर्वे ही नहीं, एग्जिट पोल तक गलत निकले थे। 'शाइनिंग इंडिया' का खूब हल्ला था, तय लग रहा था कि भाजपा के नेतृत्व में गठबंधन वापसी कर लेगा, पर कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी। सर्वेक्षण करने वालों को तगड़ा झटका लगा था। लोग पूछने लगे थे कि सर्वे कैसे किया गया?

वैसे, केवल भारत ही नहीं, दूसरे देशों में भी सर्वेक्षण हमेशा सही नहीं होते हैं। हां, जिन देशों में दो दलीय व्यवस्था या कम सियासी पार्टियां हैं, वहां सर्वेक्षण अपेक्षाकृत आसान हैं और उनका आकलन भी सटीक निकलता है। अमेरिका की बात करें, तो वहां राष्ट्रपति चुनाव के समय ज्यादातर सर्वे होते हैं, उसमें ज्यादातर दो ही उम्मीदवारों के बीच मुकाबला होता है, तो वहां सर्वेक्षण के सटीक होने की गुंजाइश ज्यादा होती है। अपने देश में देखिए, राज्यों में अलग-अलग पार्टियां हैं, उनके बीच गठबंधन होता है और गठबंधन भी स्थिर नहीं रहता है। अपने देश में वर्गीकरण बहुत हैं, अगर किसी क्षेत्र में एक ही तरह के लोग ज्यादा हों, तो आकलन आसान हो जाता है, पर भारत में आबादी बहुत मिली-जुली है, स्थानीय लोग भी हैं और बाहरी लोगों में भी बहुत विविधता है, तो कोई अनुमान लगाना आसान नहीं है। अपेक्षाकृत कम विविधता वाले अमेरिका में भी सर्वेक्षण पूरी तरह से नाकाम हुए हैं। कोई भी ऐसा देश नहीं, जहां सारे सर्वे सफल रहे हों।

क्या सर्वेक्षणों की गुणवत्ता के लिए प्रयास किए जा सकते हैं? मैं इस बात का पक्षधर नहीं हूं कि हार-जीत वाले सारे सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध लगा दिया जाए, पर पारदर्शिता का प्रदर्शन अनिवार्य होना चाहिए। जब भी कोई आंकड़ा आप साझा करें, तो उसके बार में आपको विस्तार से स्रोत बताने चाहिए, आपने किस मकसद से सर्वे किया, उसके लिए आपके पास पैसा कहां से आया? सर्वेक्षण के लिए आप किन लोगों के बीच गए? सर्वेक्षण करने वालों को जवाब देने की स्थिति में होना चाहिए, केवल आंकड़े पेश कर देने से काम पूरा नहीं हो जाता। लोगों को सर्वेक्षणों पर जरूर सवाल खड़े करने चाहिए, ताकि सर्वे में गंभीरता आए। सर्वेक्षण के नतीजे गलत हो जा रहे हैं, इसका मतलब कतई यह नहीं कि उन पर रोक लगा दी जाए।

सर्वे की पारदर्शिता के लिए कानूनी प्रबंध भी किया जा सकता है। प्रेस की आजादी के तहत भी दिशा-निर्देश लाए जा सकते हैं। जैसे आदर्श चुनाव संहिता प्रत्याशियों के लिए होती है, उसी तरह से एक संहिता चुनावी सर्वेक्षणों के लिए हो सकती है। चुनाव आयोग के पास ताकत है, वह चाहे, तो दिशा-निर्देश जारी कर सकता है। सर्वेक्षणकर्ताओं को बताया जा सकता है कि सही या ईमानदार सर्वेक्षण कैसे किया जाए? कानून भले न बने, पर सर्वेक्षण के लिए दिशा-निर्देश स्पष्ट करने की जरूरत है, ताकि किसी सर्वेक्षण पर सवाल न उठे और उनके नतीजों से लोगों को सोचने का हुनर मिले। ड्राइविंग लाइसेंस के बिना वाहन चलाने पर दंडित होना पड़ता है, वैसे ही विधि का पालन किए बगैर सर्वेक्षण की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

आंध्र प्रदेश के चुनावी समर में नायडू ने रेड्डी को ललकारा

यहां स्कैन करें

वी चंद्रकांत | वरिष्ठ पत्रकार

आंध्र प्रदेश में इन दिनों कुछ ज्यादा ही राजनीतिक सरगर्मी है, क्योंकि लोकसभा के साथ विधानसभा के लिए भी चुनाव हो रहे हैं। वाईएसआर कांग्रेस पार्टी के नेता और मुख्यमंत्री जगन मोहन रेड्डी ने साल 2022 में ही महसूस कर लिया था कि साल 2024 के चुनाव में उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

जगन साल 2019 के विधानसभा चुनाव में 175 विधानसभा सीटों में से 151 सीटें जीतकर सत्ता में आए थे। मौजूदा तेलुगु देशम पार्टी (तेदेपा) ने 23 सीटें जीती थीं। पवन कल्याण की जन सेना पार्टी (जेएसपी) ने सिर्फ एक सीट के साथ विधानसभा में अपना कदम रखा था। बाकी पार्टियों जैसे भाजपा, कांग्रेस, भाकपा और माकपा को कोई सीट नहीं मिली थी।

साल 2014 के चुनाव में राज्य के लोगों ने राज्य को मुश्किल हालात से बाहर निकालने के लिए चंद्रबाबू नायडू के अनुभव पर भरोसा किया था। उसके बाद जगन ने समय रहते नायडू की नाकामियों के खिलाफ लोगों में बढ़ते गुस्से को महसूस किया और अपने तमाम चुनावी वादों को सिर्फ एक नारे- 'एक मौका' में समेट दिया। 'वन चांस' की अपील काम कर गई, लेकिन जगन भी वादे के मुताबिक, विशेष रूप से पोलावरम परियोजना को पूरा करने में नाकाम रहे। वह राजधानी पर अपनी बात नहीं रख सके। जगन ने न केवल अवैज्ञानिक तरीके से और लोगों के विरोध की परवाह किए बिना जिलों का पुनर्गठन किया, बल्कि तीन राजधानियों का प्रस्ताव भी सामने रखा, कार्यकारी राजधानी के रूप में विशाखापत्तनम, विधायी राजधानी के रूप में अमरावती और न्यायिक राजधानी के रूप में कुरनूल। हालांकि, इन मुद्दों पर जनता की राय बंटी हुई है।

आंध्र प्रदेश में लोकसभा के साथ विधानसभा के लिए भी चुनाव हो रहे हैं। जमीनी हालात से सोशल मीडिया तक लोगों के विचार बंटे हुए हैं।

दूसरी ओर, विशाखापत्तनम के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन भी लोगों को रास नहीं आ रहा है। राज्य में कल्याण योजनाओं, वितरण व्यवस्था से कोई शिकायत नहीं हो सकती है, पर बाकी सब कुछ समीक्षा के दायरे में आ गया है। भूमि, रेत और शराब कारोबार इत्यादि ने भ्रष्टाचार के आरोपों का मार्ग प्रशस्त किया, जगन का कर्मचारी विरोधी रवैया और विरोधियों के खिलाफ कानून और व्यवस्था के दुरुपयोग ने उनकी छवि को कुछ हद तक नुकसान पहुंचाया है। उनके चाचा वाई एस विवेकानंद रेड्डी की हत्या पर उनकी चुप्पी से भी उनकी सार्वजनिक छवि पर असर पड़ा है।

ऐसे में, चंद्रबाबू नायडू और पवन कल्याण के लिए अवसर बन आया है। दोनों ने गठबंधन कर लिया है। पवन कल्याण अपने विरोधियों द्वारा व्यक्तिगत हमलों से अधिक नाराज हैं। जब भी वह जगन की आलोचना करते हैं, जगन की पार्टी के लोग उनकी शादियों पर उंगली उठा देते हैं, जबकि यह गैर-जरूरी है।

जहां तक भाजपा की बात है, तेदेपा के साथ उसका प्यार और नफरत का रिश्ता जगजाहिर है। नायडू स्वयं निश्चिंत नहीं थे कि भाजपा में उनका स्वागत किया जाएगा या नहीं, लेकिन उन्होंने तालमेल के लिए अपने अहंकार को किनारे रख दिया है। वैसे, भाजपा राज्य में पुख्ता पैठ बनाने में विफल रही है और अंततः उसने पवन कल्याण और उनके माध्यम से तेदेपा से हाथ मिलाना पसंद किया है। राज्य में अभी मुख्यमंत्री जगन की बहन शर्मिला रेड्डी की हिस्सेदारी कम है, जो अब आंध्र प्रदेश में कांग्रेस पार्टी की प्रमुख हैं, वह केवल तेदेपा-जेएसपी-भाजपा की संभावनाओं को ही थोड़ा प्रभावित करेंगी।

कुल मिलाकर, आंध्र प्रदेश में चुनाव की यही पृष्ठभूमि है। मोटे तौर पर रेड्डी, ईसाई और मुस्लिम समुदाय जगन मोहन रेड्डी के साथ हैं। कापू काफी हद तक पवन कल्याण के साथ हैं। कम्मास और अन्य तेदेपा के साथ हैं। एक मजबूत मछुआरा समुदाय भी है, जो जिलेवार विभाजित होकर वोट देता आया है।

साल 2024 का चुनाव आंध्र प्रदेश में कांटे की लड़ाई बन गया है। सोशल मीडिया भी इस हद तक बंटा हुआ है कि अमेरिका और यूरोप के अनेक शहरों से भी हेट-जगन या हेट-नायडू अभियान चलाए जा रहे हैं। बेरोजगारी, महंगाई, कानून-व्यवस्था की नाकामी, दलितों पर हमले और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे विपक्षी खेमे तक सिमटे दिखते हैं। अब सब 13 मई के इंतजार में हैं, जब राज्य का भाग्य ईवीएम में कैद होगा।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

संसार या संन्यास

आज से 2,622 वर्ष पूर्व समृद्ध जनपद वैशाली के क्षत्रिय कुंडग्राम में महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। उनकी जीवन-दृष्टि के अनेक आयामों ने सृष्टि की समस्याओं का समाधान किया, फिर भी उनकी उपदेश-धारा में सर्वोच्च दृष्टि 'अनेकांतवाद' की ही रही। जटिल प्रश्न था- संन्यास ही मार्ग है या संसार? महावीर ने कहा- दोनों! पहले अपनी क्षमता को पहचानो। त्याग की क्षमता हो, आत्मनिर्भरता लक्ष्य हो, तो संन्यास उत्तम मार्ग है। यदि त्याग का सामर्थ्य नहीं है, परस्पर निर्भरता और सहयोग की इच्छा हो, तो गृहस्थी का मार्ग श्रेष्ठ है।

विश्व के जितने भी सिद्धांत हैं, अहिंसा व सत्य की जो अवधारणाएं हैं, जितनी भी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाएं या धार्मिक-दार्शनिक प्रतिपादनाएं हैं, जितनी भी पारिवारिक-आर्थिक परिकल्पनाएं हैं, सभी को औचित्य प्रदान करने वाला, सभी विरोधों को सामंजस्य में बदलने वाला, अनेकता का एकता में, एकता का अनेकता में विस्तार करने वाला व्यापक दृष्टिकोण ही अनेकांतवाद है। इसी से भगवान महावीर ने अपने युग की, हर युग की समस्या का समाधान किया। अनेकांत एक 'मास्टर की' है, जो हर समस्या के ताले को खोलने की कला से युक्त है। यह कला भी है, विज्ञान भी, जिसे उपनिषदों में *सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म* कहा गया है।

महावीर स्वामी को यह ज्ञात था कि बुद्धि का पात्र छोटा होता है, हृदय का पात्र बड़ा। लेकिन उन्हें बुद्धि-पात्र को भी विशाल बनाने की क्षमता प्राप्त थी। युग उस मुकाम पर पहुंच चुका था, जब मानव-बुद्धि के द्वार बंद नहीं किए जा सकते थे, जरूरत इस बात की थी कि उस द्वार को व्यापक बनाया जाए। एक द्वार की जगह कई द्वार खोले जाएं, ताकि उनके माध्यम से सत्य का साक्षात् हो सके। वस्तुतः संसार में कुछ भी विरोधी नहीं होता। हम अपनी संकीर्ण बुद्धि के कारण भिन्न वस्तुओं को विरोधी मान लेते हैं। क्या स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के विरोधी हैं? नहीं। वे एक-दूसरे से भिन्न हैं और एक-दूसरे के परिपूरक भी। यदि वे विरोधी होते और एक-दूसरे का विनाश करके स्वयं को बचाते, तो न वे स्वयं बच पाते और न ही सृष्टि-क्रम बच पाता।

अनेकांत एक 'मास्टर की' है, जो हरेक समस्या के ताले को खोलने की कला से युक्त है। यह कला भी है, विज्ञान भी, जिसे उपनिषदों में *सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म* कहा गया है।

अनेकांत कहता है, सृष्टि में पुरुष-सत्ता ही महत्वपूर्ण नहीं है, स्त्री-सत्ता भी उतनी ही आवश्यक है। अनेकांत पुरुष-नारी से आगे बढ़कर नपुंसक सत्ता को भी अधिमान देता है। इसलिए पुरुष, स्त्री की तरह नपुंसक शरीर भी सिद्ध बन सकता है। अनेकांत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, एक मानव जैन वेश में, जैन विधि से अपने दोषों को दूर कर सकता है, तो जैनेतर संन्यासी अपनी विधि से कल्याण-पथ पर चल सकता है। स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, गृहस्थ लिंग सिद्ध, इस त्रिविधता को स्वीकार करना ही अनेकांत का उदार रूप है।

बहुश्रुत जय मुनि जी

कैलाश सत्यार्थी | नोबेल विजेता

भगवान राम के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, उनका करुणा से भरे समुद्र की तरह होना। दूसरों की पीड़ा को अपनी तकलीफ की तरह महसूस करते हुए निःस्वार्थ भाव से उनका समाधान करना ही करुणा है। दशरथ पुत्र, सीतापति ऐसे ही हैं।

दरकने लगा ईवीएम पर से भरोसा

अगर यह खबर सही है कि केरल में मॉक ड्रिल में एक खास पार्टी को गलत वोट गए, तो यह बहुत गंभीर मामला है और चुनाव आयोग इस बात को नजरअंदाज नहीं कर सकता। लोकतंत्र में एक-एक वोट की पवित्रता है। अटल सरकार एक वोट से गिर गई थी। हाल में हिमाचल से राज्यसभा चुनाव में भाजपा और कांग्रेस के दोनों प्रत्याशियों को बराबर वोट पड़े, तब कैसे नतीजा निकाला गया, यह भी पूरे देश ने देखा। इसलिए ईवीएम के खिलाफ कही जा रही तमाम बातें सही लगती हैं। देश में दर्जनों विधायक, सांसद हजार वोटों से भी कम के अंतर से जीतते रहे हैं। ऐसे में, यदि ईवीएम में वोट इधर से उधर जाने लगे, तब तो हमारा लोकतंत्र मखौल बनकर रह जाएगा! इसलिए वीवीपैट की पूरी गिनती बहुत आवश्यक है।

मौजूदा चुनाव आयोग वीवीपैट की गिनती और मिलान को लेकर अजीबोगरीब मुद्रा अपनाता रहा है। अव्वल तो इस मसले पर जब विपक्षी दलों के प्रतिनिधियों ने उससे वक्त मांगा, तो उसने उन्हें समय नहीं दिया। वीवीपैट की सौ फीसदी गिनती पर पहले उसने कहा कि इससे मतगणना में ज्यादा वक्त लगेगा, बाद में उसने कहा कि इससे वोटर की गोपनीयता भंग होगी, फिर दलील आई कि वीवीपैट की व्यवस्था इस हिसाब से तैयार ही नहीं की गई है, फिर एक तर्क कागज की गुणवत्ता को लेकर सुनने को मिला। यही नहीं, चुनाव कार्यक्रमों की घोषणा करते हुए मुख्य चुनाव आयुक्त ने विपक्षी दलों पर शेरो-शायरी के जरिये जिस तरह से तंज कसा और अब केरल से आई खबरों से साफ लगता है कि दाल में कुछ न कुछ काला जरूर है।

आखिर क्या वजह है कि जब पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त कह रहे हैं कि वीवीपैट की गिनती करने में बमुश्किल एक दिन अधिक लगेगा, तब वर्तमान चुनाव आयोग आनाकानी कर रहा है? एक तरफ वह सुरक्षित व स्वतंत्र वोटिंग सुनिश्चित करने के नाम पर सात चरणों में मतदान करा रहा है। छोटे-छोटे प्रदेशों में कई-कई चरण तय कर दिए हैं और दूसरी तरफ डाले गए मतों की पवित्रता को लेकर इतना ढीला-ढाला रवैया? चुनाव आयोग की साख कहां पहुंच गई है, यह हालिया सीएसडीएस सर्वे में देख लीजिए। आश्चर्य की बात है कि चुनाव आयुक्तों को इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ रहा! मगर देश को एक साफ-सुथरा चुनाव चाहिए। टीएन शेषन वाली विश्वसनीयता चाहिए और यह भरोसा तभी बन सकेगा, जब ईवीएम के वोट वीवीपैट से सौ फीसद मिलेंगे। यदि देश भर में एटीएम बराबर नोट दे सकती है, तो ईवीएम भी बराबर वोट सुनिश्चित करे।

सर्वेश मांझी, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम

ईवीएम-विवाद

यह अब भी भरोसेमंद चुनावी मशीन

भारत दुनिया का सबसे विशाल लोकतंत्र है। अमेरिका की जितनी कुल आबादी है, उससे दोगुना मतदाता तो यहां मतदान करते हैं, जबकि पंजीकृत वोटरों की संख्या तिगुनी होगी। इसलिए अमेरिका और जर्मनी की मतदान प्रक्रिया से तुलना बेमानी है। इन दिनों कुछ हताश-निराश राजनीतिक दल और नेता ईवीएम को दोषपूर्ण ठहराकर अपना चेहरा छिपा रहे हैं, जबकि दर्जनों विधानसभा और कई लोकसभा चुनाव इसी मशीन से हो चुके हैं और कोई राजनीतिक दल एकतरफा परिणाम देने का दोष साबित नहीं कर सकता। दिलचस्प बात यह है कि साल 2009 के आम चुनाव में पराजय के बाद भारतीय जनता पार्टी के नेता लालकृष्ण आडवाणी ने ही ईवीएम के खिलाफ मोर्चा खोला था। आजकल राज्यसभा सदस्य जीवीएल नरसिम्हा राव तब भाजपा-प्रवक्ता हुआ करते थे और उन्होंने 2010 में बाकायदा इस मशीन के खिलाफ एक किताब लिख डाली- *डेमोक्रेसी ऐट रिस्क : कैन वी ट्रस्ट आवर इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन?* तब कांग्रेस पार्टी के नेता भाजपा का मजाक उड़ाते हुए कहते थे- खिसियानी बिल्ली खंबा नोचे! आज भाजपा ईवीएम का बचाव कर रही है और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता इस पर हमलावर हैं।

जब पहली बार वोटिंग मशीन की विश्वसनीयता को लेकर कुछ राजनीतिक दलों ने आशंका जताई थी, तब चुनाव आयोग ने इसे काफी गंभीरता से लिया था और सभी राजनीतिक दलों को यह चुनौती दी थी कि वे इस मशीन को हैक करके दिखाएं। आयोग ने वक्त और जगह तक मुकर्रर कर दी, मगर किसी सियासी पार्टी के तकनीकी जानकारों ने यह कोशिश नहीं की। क्यों? क्योंकि ईवीएम सौ फीसदी भरोसेमंद है। जब यह दांव नहीं चला, तो अब हताश लोग वीवीपैट का राग अलापने लगे हैं और रोज झूठे-सच्चे वीडियो यू-ट्यूब से उठाकर लोगों को भ्रमित करने का काम कर रहे हैं। इन फर्जी वीडियो के आधार पर दावा किया जाता है कि वीवीपैट भी संदिग्ध है। इसलिए अब मांग की जा रही है कि सौ फीसदी वीवीपैट की गिनती कराई जाए, ताकि वोटों के साथ उनको मिलाकर दूध का दूध और पानी का पानी किया जा सके। मगर क्या गारंटी है कि कल ये कोई नया शिगूफा न लेकर आ जाएं?

किसी भी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव और सत्ता के निष्कंटक हस्तांतरण से बनती है। पिछले सात दशकों में सत्ता के हस्तांतरण में तो कभी किसी किस्म का व्यवधान नहीं आया, मगर चुनावों को लेकर राजनीतिक दलों और नेताओं में परिपक्वता की कमी साफ दिखती रही है। बेहतर होगा कि वीवीपैट का मुद्दा अंतिम रूप से हल हो जाए!

जुबिन सक्सेना, टिप्पणी

कल्पमेधा

जब खुशी का एक दरवाजा बंद होता है तो दूसरा खुल जाता है, लेकिन हम अक्सर बंद दरवाजे की तरफ काफी देर तक देखते रहते हैं और जो हमारे लिए खुला है, उसको नहीं देखते।

– हेलेन केलर

लक्षित आतंक

पिछले कुछ समय से जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा बलों की बढ़ती सख्ती के बीच आतंकियों पर शिकंजा कसा है। इसकी वजह से आतंकवादियों के बीच हताशा की स्थिति साफ देखी जा सकती है। शायद यही वजह है कि अब आतंकियों ने पहचान तय करके किसी साधारण व्यक्ति को मार डालने की नई रणनीति पर काम करना शुरू कर दिया है, ताकि सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया जा सके। मगर उनकी ऐसी बर्बरता और अपनी मंशा को पूरा करने के लिए मानवीयता के खिलाफ हर हद को पार करने की हरकतों से उनकी हकीकत का पता चलता है। वरना क्या कारण है कि वहां अन्य राज्य से आकर कोई छोटा-मोटा काम करके गुजारा करने वाले गरीब लोगों या मजदूरों को भी मार डालने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती। हालांकि आतंकवाद की जिस दृष्टि के साथ वे काम करते हैं, उसमें उनकी इस तरह की अमानवीय हरकतों पर हैरानी नहीं होती।

गौरतलब है कि जम्मू-कश्मीर के अनंतनाग जिले में आतंकवादियों ने एक बार फिर लक्षित हत्या की घटना को अंजाम दिया। बुधवार को बिजबेहरा इलाके के जबलीपोरा में आतंकियों ने एक मजदूर को नजदीक से गोली मार दी। मारा गया व्यक्ति बिहार से वहां जाकर मजदूरी और अन्य काम करता था। केवल इस वर्ष निशाना बना कर किसी व्यक्ति को मार डालने की यह तीसरी घटना है। पिछले कुछ समय से सुरक्षा बलों की बढ़ती सख्ती के बीच हताश आतंकियों ने अब राज्य के बाहर से आकर गुजारा करने वाले लोगों की हत्या करना शुरू कर दिया है। इससे पता चलता है कि उनका मकसद राजनीतिक नहीं है, बल्कि हिंसा और निर्दोष या मासूम लोगों की हत्या के जरिए आतंक फैलाना ही उनकी राजनीति है। दरअसल, यह वारदात जिस अनंतनाग लोकसभा क्षेत्र में हुई, वहां सात मई को तीसरे चरण के तहत मतदान होना है और उम्मीद की जा रही है कि वहां लोग अपने मताधिकार का खुल कर प्रयोग करेंगे। जाहिर है, बिहार से जम्मू-कश्मीर जाकर मजदूरी करने वाले व्यक्ति की हत्या दरअसल स्थानीय लोगों के बीच भी दहशत फैलाने की कोशिश है, ताकि लोगों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने से रोका जा सके।

समस्या यह है कि आए दिन सरकार आतंकवाद का सामना करने और उसका खात्मा करने के लिए हर स्तर पर सख्ती बरतने और आतंकियों का असर कम होने का दावा करती है। निश्चित रूप से आतंकियों पर नकेल कसने में मदद मिली है। आतंकवादी संगठनों को अब पहले के मुकाबले स्थानीय लोगों का संरक्षण भी नहीं मिल पा रहा है। ऐसी हत्याओं से सुरक्षा व्यवस्था के चौकस होने के सरकार के दावों पर भी सवाल उठते हैं। लक्षित हत्याओं की नई रणनीति से आए दिन बाहरी या फिर स्थानीय लोगों को जिस तरह पहचान कर निशाना बना कर मार डालने की घटनाओं के जरिए लोगों के बीच आतंक फैलाने की कोशिशों में जिस तरह बढ़ोतरी हुई है, उससे साफ है कि अभी आतंकियों का असर खत्म नहीं हुआ है। किसी की पहचान तय करके उसे मार डालने का एक मकसद यह भी होता है कि अलग-अलग समुदायों के बीच आपस में दूरी और संदेह का माहौल पैदा किया जाए, ताकि असुरक्षाबोध से घिरे लोगों का इस्तेमाल मन-मुताबिक किया जा सके। जाहिर है, सुरक्षा बलों को अब हालात के मुताबिक नई रणनीति के तहत आतंकियों के खिलाफ मोर्चा लेना होगा।

असुविधा की पटरी

इस बात की कल्पना भी असहज कर दे सकती है कि किसी व्यक्ति को चार-पांच घंटे या उससे ज्यादा देर तक लगातार काम करते रहना पड़े और जरूरत पड़ने भी उसके लिए शौचालय की सुविधा न हो। मगर यह समस्या एक विद्रूप बन जाती है जब इस तरह की मुश्किल महिला कर्मचारियों से जुड़ी हो। देश में चलने वाली रेलगाड़ियों में आमतौर पर सभी डिब्बों में शौचालय की सुविधा होती है और यात्री अपनी जरूरत के मुताबिक उसका उपयोग करते हैं। मगर ट्रेन के इंजनों में आमतौर पर शौचालय की व्यवस्था नहीं होती, जिसकी वजह से चालकों को अन्य विकल्प अपनाने पड़ते हैं। इस बुनियादी सुविधा के अभाव की स्थिति में महिलाओं को कैसी समस्या होती होगी, इसका अंदाजा भर लगाया जा सकता है। यही वजह है कि महिला ट्रेन चालकों के एक समूह ने रेलवे बोर्ड से आग्रह किया है कि या तो उनके कामकाज की दयनीय परिस्थितियों में सुधार किया जाए या फिर उन्हें अन्य विभागों में स्थानांतरित कर दिया जाए।

भारतीय रेल के व्यापक तंत्र में तमाम समस्याओं पर बात होती रही है, उसमें सुधार के लिए काम होते रहे हैं। इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर की सेवा बनाने के दावों के बीच बुलेट ट्रेन या अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस ट्रेनों के संचालन की घोषणाएं होती रही हैं। मगर ट्रेन को चलाने और गंतव्य तक सुरक्षित पहुंचाने की जिम्मेदारी जिन चालकों पर होती है, उनकी सुविधा-असुविधा पर बहुत कम बात होती है। इंजन में बुनियादी सुविधाओं के अभाव की स्थिति में पुरुष चालक तो किसी तरह अपना काम चला लेते हैं, लेकिन महिलाओं के सामने बहुस्तरीय चुनौतियां होती हैं कि वे अपनी ड्यूटी या फिर निजी जरूरतों के लिए ट्रेन से बाहर कैसे जाएं। उन्हें शौचालय की सुविधा की कमी और माहवारी के समय पैड नहीं बदल पाने सहित कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सवाल है कि अत्याधुनिक तकनीकों से लैस उच्च गति वाली ट्रेनें चलाने की घोषणाओं के बीच इनके इंजन को शौचालयों की सुविधा से लैस क्यों नहीं किया जा सकता? ट्रेनों में महिला चालकों की जरूरतों का ध्यान रखते हुए अगर रेलगाड़ियों के इंजन में बुनियादी सुविधाओं का इंतजाम किया जाता है, तभी आधुनिकीकरण या इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनाने के दावों का कोई मतलब है!

धुएं में घुटता महिलाओं का दम

विश्व स्वास्थ्य संगठन यानी डब्लूएचओ का कहना है कि पिछले दो दशक में वायु प्रदूषण वैश्विक संकट बन गया है, खासकर दक्षिण एशियाई देशों में इसका प्रभाव गहरा है।

अमित बैजनाथ गर्ग

वायु प्रदूषण के खतरनाक स्तर के कारण दक्षिण एशिया, खासकर भारत और पाकिस्तान में महिलाएं सांस और हृदय संबंधी समस्याओं, कैंसर और अन्य बीमारियों से जूझ रही हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि सरकार को इस समस्या के समाधान के लिए और अधिक प्रयास करने होंगे। हालांकि वायु प्रदूषण सभी को प्रभावित करता है। चिकित्सकों का कहना है कि महिलाओं को इससे कुछ अनोखी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हाल के शोधों में वायु प्रदूषण से महिलाओं में पैदा होने वाले स्तन कैंसर के मामले अधिक पाए गए हैं। वहीं, लकड़ी वाले चूल्हे पर खाना पकाने जैसी गतिविधियां महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए जोखिम बढ़ाती हैं।

विशेषज्ञों का कहना है कि घर के अंदर वायु प्रदूषण सिर्फ खाना पकाने से नहीं, बल्कि गर्मी और रोशनी से भी होता है। यह वनों की कटाई और शहरीकरण से काफी हद तक बढ़ गया है। वहीं महिलाएं अपनी शारीरिक संरचना, प्रजनन, संतुलित आहार न लेने, रसोई में अधिक समय बिताने और आर्थिक रूप से स्वतंत्र न होने के कारण वायु प्रदूषण से अधिक प्रभावित होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन यानी डब्लूएचओ का कहना है कि पिछले दो दशक में वायु प्रदूषण वैश्विक संकट बन गया है, खासकर दक्षिण एशियाई देशों में इसका प्रभाव गहरा है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह खराब सार्वजनिक स्वास्थ्य में योगदान देने वाला प्रमुख पर्यावरणीय कारक है, जिससे दुनिया भर में सालाना सत्तर से नब्बे लाख मौतें होती हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो माइकल ग्रीनस्टोन ने कहा कि वायु प्रदूषण से प्रभावित वैश्विक आबादी का तीन-चौथाई हिस्सा छह देशों- बांग्लादेश, पाकिस्तान, भारत, चीन, नाइजीरिया और इंडोनेशिया में रहता है। मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा बाहरी खतरा होने के बावजूद एचआइवी-एड्स, मलेरिया और टीबी के लिए सालाना आबंटित पर्याप्त धनराशि की तुलना में वैश्विक वायु गुणवत्ता सुधारने संबंधी बुनियादी ढांचे में निवेश बहुत कम है। इसे बढ़ाने पर सभी प्रमुख संगठनों को विचार करना चाहिए।

शिकागो विश्वविद्यालय की ओर से जारी ताजा रपट विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान में जीवन प्रत्याशा पर वायु प्रदूषण के गंभीर प्रभावों को रेखांकित करती है। अध्ययन के अनुसार डब्लूएचओ के वायु गुणवत्ता मानकों का पालन करने से भारत के लोगों की औसत जीवन प्रत्याशा में संभावित रूप से पांच वर्ष, जबकि पाकिस्तान के लोगों की जीवन प्रत्याशा में 3.9 वर्ष का इजाफा हो सकता है। डब्लूएचओ का कहना है कि अगर वायु प्रदूषण का वर्तमान स्तर जारी रहता है, तो लाहौर, कसूर, शेखपुरा और पेशावर जैसे प्रमुख पाकिस्तानी शहरों में औसत जीवन प्रत्याशा सात साल तक कम हो सकती है। 'पेशावर क्लीन एयर एलायंस' संगठन की रपट कहती है कि पाकिस्तान में वायु प्रदूषण के कारण वार्षिक बाईस हजार से अधिक असामयिक मौतें होती हैं।

'लैंसेट' पत्रिका के अध्ययन में कहा गया है कि वायु प्रदूषण भारत में सालाना करीब 23 लाख से अधिक असमय मौतों का कारण बनता है। वहीं 'आइक्यूएयर' का कहना है कि भारत ने अब दुनिया के तीसरे सबसे

प्रदूषित देश का स्थान हासिल कर लिया है। रपट के अनुसार, 2023 में भारत की वायु गुणवत्ता औसत वार्षिक पीएम 2.5 सांद्रता 54.4 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर के साथ केवल बांग्लादेश और पाकिस्तान से बेहतर है। बांग्लादेश में यह 90.9 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर, जबकि

> **प्रदूषण महिलाओं के स्वास्थ्य को कई तरह से नुकसान पहुंचाता है। कुछ महिलाओं का कहना है कि यह उनकी गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं में योगदान देता है। कई महिलाओं के लिए बाहरी वायु प्रदूषण के प्रभाव घर के अंदर के वायु प्रदूषण से और भी बदतर हो जाते हैं। परीक्षण से पता चला है कि लकड़ी से खाना पकाने वाली कई महिलाओं को 'क्रोनिक आब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज' है। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसके कारण सांस लेने में कठिनाई होती है। इसके लिए डाक्टरों ने धूम्रपान और वायु प्रदूषण को जिम्मेदार ठहराया है।**

पाकिस्तान में 73.7 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है। इन आंकड़ों ने बांग्लादेश और पाकिस्तान को 134 देशों में क्रमशः सबसे अधिक और दूसरे सबसे प्रदूषित देशों के रूप में स्थान दिया है। पेशावर, लाहौर तथा कराची जैसे पाकिस्तानी शहरों में लोगों को दिल्ली जैसे भारतीय शहरों के समान स्वास्थ्य खतरों का सामना करना पड़ता है। पेशावर की हवा प्रतिदिन चार सिगरेट के बराबर स्वास्थ्य जोखिम पैदा करती है।

प्रदूषण महिलाओं के स्वास्थ्य को कई तरह से नुकसान पहुंचाता है। कुछ महिलाओं का कहना है कि यह उनकी गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं में योगदान देता है। कई महिलाओं के लिए बाहरी वायु प्रदूषण के प्रभाव घर के अंदर के वायु प्रदूषण से और भी बदतर हो जाते हैं। परीक्षण से पता चला है कि लकड़ी से खाना पकाने वाली कई महिलाओं को 'क्रोनिक आब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज' है। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसके कारण सांस लेने में कठिनाई होती है। इसके लिए डाक्टरों ने धूम्रपान और वायु प्रदूषण को जिम्मेदार ठहराया है।

हालांकि लाइलाज होते हुए भी इस बीमारी पर काबू पाया जा सकता है। बहुत सारी महिलाओं को इनडोर यानी घर के भीतर वायु प्रदूषण का खमियाजा भुगतना पड़ता है। खाना पकाने जैसी घरेलू गतिविधियों के लिए ईंधन के रूप में लकड़ी या गोबर का इस्तेमाल करने से हानिकारक कण निकलते हैं, जो महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इसका प्रभाव फेफड़ों की बीमारियों से आगे बढ़कर त्वचा और आंखों की बीमारियों तक शामिल है। ये हानिकारक कण महिलाओं में हृदय रोग, स्ट्रोक, फेफड़ों के रोग, कैंसर और मधुमेह का कारण बन सकते हैं।

पाकिस्तान की एक स्वास्थ्य कार्यकर्ता कहती हैं कि जो महिलाएं खाना पकाने के लिए लकड़ी का उपयोग करती हैं, वे प्रदूषण से संबंधित बीमारियों से पीड़ित होती हैं। वहीं गोबर की आग से निकलने वाले धुएं से श्वसन और फेफड़ों की बीमारियां, ब्रोंकाइटिस आदि होती हैं। रसोई संबंधी गतिविधियों के दौरान गैस स्टोव का उपयोग करने और मास्क पहनने की सलाह दी जाती है। पाकिस्तान में घर में खाना पकाने के लिए लकड़ी और मिट्टी के तेल के उपयोग से जुड़े खतरों के प्रति महिलाओं को आगाह किया जा रहा है। ये कार्बन मोनोआक्साइड, कार्बन डाइआक्साइड और सल्फर डाइआक्साइड जैसी हानिकारक गैसों का उत्सर्जन करती हैं, जो मस्तिष्क, छाती और फेफड़ों की बीमारियों में योगदान करती हैं। वायु प्रदूषण में वृद्धि अस्थमा और कैंसर जैसी स्थितियों में वृद्धि से भी जुड़ी हुई है। इस बीच, बाहरी वायु प्रदूषण हर किसी के लिए एक बढ़ती हुई समस्या है। वह प्रदूषण पर अंकुश लगाने के लिए आधुनिक तकनीक का उपयोग करके पर्यावरण-अनुकूल ईंट-भट्टों की वकालत करते हैं।

स्त्री रोग विशेषज्ञ वायु प्रदूषण से बचाव के लिए लोगों, विशेषकर श्वसन संबंधी समस्याओं से ग्रस्त लोगों को मास्क पहनने की सलाह देते हैं। वे प्रदूषण के खिलाफ शरीर को मजबूत बनाने के लिए योग, व्यायाम और पौष्टिक आहार की वकालत करते हैं। स्वच्छ हवा की वकालत करने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि सभी सरकारों को इस समस्या के समाधान के लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत है। वायु प्रदूषण पर काबू पाने के लिए देशव्यापी प्रयासों की जरूरत है, जैसे प्लास्टिक और टायर जलाने पर रोक लगाना। हालांकि अभी हालात में कोई खास सुधार नजर नहीं आ रहा है। पूरे दक्षिण एशिया में महिलाएं वायु प्रदूषण से बड़ी संख्या में बीमार पड़ रही हैं। सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि हरे-भरे स्थान जीवन और स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं, इसलिए हमें पर्यावरण अनुकूल बनना होगा।

आभासी दुनिया का समाज

विनय कुमार पाठक

इसमें कोई दो मत नहीं कि यह सोशल मीडिया का युग है। सोशल मीडिया के अनेक लाभ हैं, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है। स्मार्टफोन और हर जगह नेटवर्क की उपलब्धता ने सोशल मीडिया से जुड़े रहने को बहुत ही आसान बना दिया है। इसके कारण हम हमेशा अपने मित्रों रिश्तेदारों से आभासी संपर्क में तो रहते ही हैं, अनजान लोगों से भी संपर्क बना लेते हैं। विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले से आभासी दुनिया में मित्रता की जा सकती है। हमें अपनी प्रतिभा और अपना शौक भी दुनिया के साथ साझा करने का अवसर सोशल मीडिया के कारण उपलब्ध हो पाता है। यह निश्चित रूप से इसके वे फायदे हैं, जो प्रत्यक्ष दिखते हैं और आजकल के दौर में हम सब इसे देख-समझ और महसूस कर सकते हैं। पर जिस प्रकार हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार सोशल मीडिया के भी दो पहलू हैं। एक ओर इससे कई लाभ हैं और हम सब न सिर्फ अक्सर इसे गिनाते रहते हैं, बल्कि इस दुनिया में इस तरह गुम रहते हैं तो इसके पीछे हमारा तर्क यही होता है कि यह फायदेमंद है। मगर दूसरी ओर इसके नुकसान भी हैं।

हमारे व्यस्त होने में सोशल मीडिया पर मौजूद जिस भी सामग्री की भूमिका हो, हम उसके ऐसे लती हो जाते हैं कि वह एक तरह की जकड़बंदी होती है। मगर इसके समांतर दूसरे स्तर पर देखें तो अश्लील और अर्ध-अश्लील सामग्री से इंटरनेट का संसार अटा पड़ा है। इस जाल में फंसने के बाद इससे निकलना एक बड़ी चुनौती होती है। मगर इससे आगे सामाजिक प्रभाव वाली परिस्थितियां ज्यादा चिंताजनक हैं। कुछ मामलों में भीड़ हिंसा या भीड़ के हाथों हत्या जैसी जघन्य घटना भी सोशल मीडिया पर अफवाह फैलाने के कारण घटी है। इससे हम समझ सकते हैं कि इसके दुष्प्रभावों का स्तर क्या हो सकता है।

कोई भी माध्यम उपयोग करने वाले की नीयत और प्रकृति पर निर्भर करता है। परमाणु शक्ति का प्रयोग विध्वंस के लिए भी किया जा सकता है तो ऊर्जा संयंत्र के लिए भी। एक चाकू का प्रयोग किसी की जान लेने के लिए भी हो सकता है तो चिकित्सक इसका प्रयोग किसी की जान बचाने के लिए करता है। कहा भी गया है कि विष, जो प्राणों के लिए खतरा होता है, उसे भी विष के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए औषधि के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

दरअसल, सदुपयोग करने के बरक्स आज सोशल मीडिया का दुरुपयोग करने वालों की कमी नहीं है। आज फेसबुक और इंस्टाग्राम या यूट्यूब पर बहुत कम अवधि के रील बनाने और उसे सोशल मीडिया के किसी मंच पर जारी करने वालों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। कई बार लोग वीडियो बनाने के चक्कर में ऐसे-ऐसे खतरनाक कदम उठाते हैं कि अपनी जान भी गंवा बैठते हैं। पर खेद की बात यह है कि कई लोग दूसरे लोगों की भावना को ठेस पहुंचाने के लिए ही वीडियो बनाते हैं। जहां बात आस्था की होती है, वहां तर्क का कोई काम नहीं होता। हर धर्म में कई ऐसी बातें हो सकती हैं, जिसे तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। मगर सोशल मीडिया पर इसे लेकर एक विचित्र नासमझी दिखती है। सकारात्मक नकारात्मक सोच वाले लोग दूसरे धर्म की कमियों को दिखाने के लिए तरह तरह के वीडियो जारी कर देते हैं। इससे उस संबंधित धर्म के लोगों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचना स्वाभाविक है, जिस धर्म के विरुद्ध कुछ अशोभनीय लिखा या दिखाया गया है। नतीजतन, प्रतिशोध की भावना से दूसरी ओर से भी जवाब में ऐसे वीडियो जारी किए जाते हैं, जो दूसरे धर्म के लोगों की भावना को ठेस पहुंचाते हों।

इस प्रकार एक दुश्चक्र बन जाता है जो एक दूसरे धर्म के लोगों की धार्मिक भावना को आहत कर समाज में असहिष्णुता फैलाता है। इस तरह के कृत्य अविवेकशील लोगों के द्वारा किए जाते हैं। विवेक से लैस लोगों को चाहिए कि इस प्रकार की गतिविधियों पर कोई प्रतिक्रिया न दें, मगर अफसोस कि कई बार सोचने-समझने वाले लोग भी ऐसे विवादों में सक्रियता से हिस्सा लेते हैं। इससे इस तरह के विवादों का विस्तार ही होता है। कुछ ऐसे लोगों के विरुद्ध टिप्पणियां की जाती हैं, जिनका समाज के एक वर्ग के ऊपर काफी नकारात्मक प्रभाव होता है। इससे सामाजिक सौहार्द भी बिगड़ता है। जरूरी है कि इस तरह के बेकार विवादों से बचकर रहा जाए सोशल मीडिया के समाज विरोधी उपयोग करने वालों से। यों कहने को इसका नामकरण सोशल मीडिया के रूप में किया गया है, जिसका अर्थ यह होना चाहिए कि इन मंचों पर एक नया समाज बने। सवाल है कि समाज का स्वरूप क्या होता है?

सहयोग, सद्भाव और संवेदना जैसे तत्त्वों की जो प्रचुरता जमीनी स्तर पर समाज में पाई जाती है, उसका कितना अंश सोशल मीडिया पर बने कथित समाज में वास्तव में दिखता है। अगर किसी व्यक्ति ने अपने दुख या अपनी खुशी सोशल मीडिया पर साझा की, तो उसके प्रति जरूरी संवेदना जताने के लिए सैकड़ों-हजारों लोगों का संदेश आ जाएगा। मगर वास्तव में जिस तरह किसी के पास होने और उसकी मदद की दरकार होती है, उससे दुख-सुख साझा करके वास्तविक सहयोग प्राप्त करने की जो उम्मीद होती है, वह सोशल मीडिया पर शायद ही कभी पूरी होती है। जबकि जमीनी स्तर के समाज का यही सब जीवन तत्त्व रहा है। जाहिर है, इंटरनेट के आभासी समाज और वास्तविक समाज में यही फर्क है, जो एक स्तर पर सच और कल्पना की दुनिया से परिचित कराता है।

दुनिया मेरे आगे

> **वास्तव में जिस तरह किसी के पास होने और उसकी मदद की दरकार होती है, उससे दुख-सुख साझा करके वास्तविक सहयोग प्राप्त करने की जो उम्मीद होती है, वह सोशल मीडिया पर शायद ही कभी पूरी होती है। जबकि जमीनी स्तर के समाज का यही सब जीवन तत्व रहा है।**

बचाने का वक्त

पहले यूक्रेन और रूस, फिर इजराइल और फिलिस्तीन, उसके बाद अब ईरान और इजराइल के बीच युद्ध की शुरुआत की घोषणा! लगता है कि हम फिर युद्ध के असभ्य युग में आ गए हैं। चारों तरफ युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, बंदूकें आग उगल रही हैं, लाखों लोग घायल हुए और हजारों लोग बेमौत मारे जा चुके हैं। युद्ध में लगे लोग लगता है कि मानवीय संवेदनाएं भूल चुके हैं। शायद वे रिश्तों को खोने का दर्द भूल चुके हैं। काश कि ये निर्दयी, निष्ठुर यह जान पाते कि जिस बारूद का वे इस्तेमाल कर रहे हैं, पूरी मानवता को भस्म कर रहा है। नफरत बढ़ती जा रही है। राख ही राख है चारों तरफ और इंसान की खुशियां उसमें दफन हो गई हैं। अमन चैन खत्म हो गया है, युद्धप्रेमी लोग चारों ओर लाशों का ढेर देख कर खुश होते हैं। पता नहीं, युद्ध के आयोजकों को कैसे चैन पड़ता है! इससे पहले कि सब कुछ खत्म हो जाए, शांति चाहने वालों को अपना मौन तोड़ना होगा, उन लोगों को आगे आना होगा जो लोग विश्व में अमन-चैन चाहते हैं। इस धरती को तबाह होने से बचाने के लिए सभी को सार्थक प्रयास करने होंगे। नहीं तो यहां कुछ भी नहीं बचेगा।

– चरनजीत अरोड़ा, नरेला, दिल्ली

रिश्तों में सामंजस्य

कुछ लोग इस तरह के होते हैं कि अगर उनके मन का नहीं हुआ तो वे उग्र हो जाते हैं और अपने इस संवेग के कारण अपराध करते हैं। एक व्यक्ति ने सड़क पर जा रही लड़की पर तेजाब डाल दिया। आमतौर पर एकतरफा प्रेम प्रसंगों में ऐसी घटनाएं होती हैं। लड़कियां पुरुषों की अपराधी वृत्ति का शिकार होती रही हैं और ऐसे हमलों के बाद लड़की ताउम्र विकृत चहरे की पीड़ा झेलती है। एक लड़की के लिए उसका चेहरा खास होता है, जिस पर वह नाज करती है। दो लोग साथ आते हैं तो एक दूसरे से प्यार होता है तो कुछ मनमुटाव भी चलता है। मगर कभी बात बिगड़ती है तो पुलिस के पास भी मामला पहुंच जाता है। बात जब बिगड़ जाए, तो एक पक्ष को समझदारी से चुप्पी साध लेना चाहिए और दूसरे का आवेग निकल जाने देना चाहिए। व्यक्ति को कभी उग्र नहीं होना चाहिए। अगर इस पर नियंत्रण नहीं है तो उसकी यही वृत्ति हर छोटे-बड़े अपराध का कारण बनती है। इससे बचने की जरूरत है।

– दिलीप कुमार गुप्ता, बरेली

युद्ध रुके

'समय रहते' (संपादकीय, 16 अप्रैल) पढ़ा। इजराइल और हमास के युद्ध का असर अब पूरे विश्व पर होने लगा है। भारत के लिए इसमें कूटनीतिक और व्यापारिक चुनौतियां हैं। जहां भारत को इजराइल और ईरान के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों को भी संभालना है, वहीं लाल सागर में हूती विद्रोहियों से भी भारतीय जहाजों को भी सुरक्षित पहुंचाना है। यों संयुक्त राष्ट्र की ओर से प्रयास शुरू होंगे, लेकिन भारत को भी दोनों देशों के बीच कूटनीतिक मध्यस्थता द्वारा यथास्थिति कायम रखने के प्रयास करने चाहिए, ताकि स्थिति और न बिगड़े। भारत को इन देशों में रह रहे भारतीय नागरिकों की सुरक्षा भी सुनिश्चित करनी होगी। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को भी हस्तक्षेप करना होगा और शांति बहाली के प्रयास करने होंगे। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि अगर युद्ध का दायरा फैला और उसने विश्व युद्ध की शक्ल ले ली, तो आधुनिक खतरनाक हथियारों के युग में कितना बड़ा विनाश हो सकता है।

– ज्योत प्रकाश गुलाटी, रोहतक

अनूठी पहल

सड़क दुर्घटनाओं से निपटने के लिए उत्तर प्रदेश के परिवहन विभाग ने हाल ही में एक अनूठी पहल करते हुए एक ऐसी व्यवस्था बनाई है, जिसके तहत चालक, चाहे वे परिवहन निगम के हों या फिर सार्वजनिक या व्यावसायिक वाहनों के, अपने परिवार के लोगों की तस्वीर सामने रखकर ही भविष्य में वाहनों को चलाएंगे। इस तरह की अनूठी व्यवस्था के लागू होने से चालकों के ऊपर सावधानी से वाहन चलाने का एक मनोवैज्ञानिक दबाव तो पड़ेगा ही, साथ ही उनमें आम यात्रियों के प्रति सजगता एवं संवेदनशीलता का भाव भी पैदा होगा, जिसके फलस्वरूप भविष्य में होने वाली सड़क दुर्घटनाओं के काफी कमी आने की पूरी संभावना है। यानी अब भविष्य में सड़क मार्ग से किए जाने वाले सफर के एक तरह से सुरक्षित रहने की एक उम्मीद दिखाई दे रही है।

– रतन कुमार श्रीवास्तव 'रतन', लखनऊ

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। शुक्रवार, 19 अप्रैल 2024

VVPAT का दायरा बढ़े

देश में 18वीं लोकसभा के लिए होने वाले सात चरणों का मतदान आज से शुरू हो रहा है। शुक्रवार को पहले चरण की वोटिंग के लिए सारी तैयारियां हो चुकी हैं। लेकिन दिलचस्प है कि मतदान से ठीक पहले तक सुप्रीम कोर्ट में चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता से जुड़े मामले पर सुनवाई होती रही। मसला इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) में डाले गए वोटों के वोटर वेरिफाइड पेपर ऑडिट ट्रेल (VVPAT) पर्चियों से मिलान का है। कोर्ट ने अपना फैसला सुरक्षित रख लिया है।

सवाल विश्वसनीयता का

पुराना मसला | निश्चित रूप से मुद्दा अहम है और पुराना भी। EVM के जरिए वोटिंग की शुरुआत 2004 के लोकसभा चुनावों में हुई थी। तब से सरकारें बदलती रहीं, लेकिन EVM की गड़बड़ियों के आरोप लगते रहे। इस बार सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के दौरान यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी कि बैलट पेपर की ओर वापसी का विकल्प नहीं है। लेकिन उसने यह भी कहा कि चुनाव प्रक्रिया की शुचिता और उसकी विश्वसनीयता से किसी तरह का समझौता नहीं किया जा सकता।

VVPAT के बाद | EVM की विश्वसनीयता के सवाल से जूझते हुए ही 2013 में सुप्रीम कोर्ट के आदेश से VVPAT लाया गया। इससे मतदाताओं को यह देखने का मौका मिलता है कि उनका वोट उसी को गया है जिसे वह देना चाहते थे। इसने निश्चित रूप से EVM की विश्वसनीयता बढ़ाने वाले एक टूल के रूप में अपनी जगह बनाई है, लेकिन विवाद का कोई सर्वमान्य हल उसके बाद भी नहीं निकल सका।

दायरा बढ़ाया | 2019 के लोकसभा चुनावों से पहले यह मामला एक बार फिर जोरदार ढंग से उठा। तब सुप्रीम कोर्ट में पिटिशन के जरिए मांग की गई कि हर लोकसभा क्षेत्र में 50 फीसदी VVPAT पर्चियों का मिलान किया जाए। इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टिट्यूट का कहना था कि अगर बिना किसी तय आधार के यूं ही चुन लिए गए 479 EVM का VVPAT से मिलान किया जाता है तो 99 फीसदी सटीक नतीजे आ सकते हैं। चुनाव आयोग ने बताया कि वह इससे आठ गुना ज्यादा EVM लेता है। फिर भी सुप्रीम कोर्ट ने VVPAT मिलान का दायरा पांच गुना और बढ़ाने को कहा।

वक्त कोई मसला नहीं | बावजूद इसके, मामला अभी भी फंसा हुआ है। अभी हर विधानसभा क्षेत्र से 5 EVM की VVPAT पर्चियां मिलान के लिए ली जाती हैं। सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में हर वोट के मिलान की मांग की गई है। दिक्कत है कि VVPAT की पर्चियों के मिलान में वक्त लगता है। पर सवाल चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता का हो तो वक्त कोई मसला नहीं होना चाहिए। यूं भी 2004 में लोकसभा चुनाव की प्रक्रिया तीन महीने में पूरी हुई थी। इस बार इसे छह सप्ताह का समय लिया जा रहा है। जब वोटिंग में इतना समय लिया गया तो थोड़ा वक्त काउंटिंग में भी लगने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। बेहतर होगा चुनाव आयोग अपनी तरफ से VVPAT मिलान का दायरा बढ़ाने पर विचार करे।

क्रॉस-वर्ल्ड

धंधा सबसे ऊपर

शैलेंद्र पांडेय

चुनावों में राजनीति के बीच इकॉनमी की भी चर्चा हो रही है। देश का दुनिया की शीर्ष पांच अर्थव्यवस्थाओं में शुमार होना बड़ी बात है। नरेंद्र मोदी सरकार ने 2047 तक भारत को विकसित मुल्क बनाने का भी लक्ष्य रखा है। उन्हीं की सरकार ने 'मेक इन इंडिया' की पहल शुरू हुई, जिसका मकसद है मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर की ग्रोथ को बढ़ाना। आत्मनिर्भर भारत की पहल भी है। यानी, ऐसा भारत जो किसी भी चीज के लिए किसी और देश पर निर्भर न रहे। कमोबेश ऐसा ही जोर दूसरी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में भी दिख रहा। अमेरिका हो या रूस या चीन, सभी इकॉनमिक नैशनलिज्म की तरफ बढ़ रहे हैं। आर्थिक राष्ट्रवाद का मतलब है ऐसी आर्थिक नीतियां बनाना, जिनमें राष्ट्रवादी लक्ष्य सबसे ऊपर हों। चीन ने जब इस ओर कदम बढ़ाए तो कुछ ही दशकों में उसने पूरे देश को एक फैक्ट्री में बदल दिया। चीन ने अपनी चीजों से दुनियाभर के बाजार पाटकर रख दिए। उसकी इस आक्रामकता ने भले ही उसकी अपनी अर्थव्यवस्था को पंख लगाए हो, लेकिन कई देशों का उसके साथ व्यापार घाटा बढ़ गया। अब वह अपनी मुद्रा युआन को ग्लोबल करेंसी बनाना चाहता है। अमेरिका के साथ उसके ट्रेड वॉर की एक वजह यह भी रही। डॉनल्ड ट्रंप के दौर में 'अमेरिका फर्स्ट' की नीति अपनाई गई। इंपोर्ट पर टैरिफ बढ़ाकर ट्रंप अपने घरेलू उद्योग-धंधों को बढ़ावा देना चाहते थे। तो, इकॉनमिक नैशनलिज्म का एक पहलू यह भी है, जहां अपने आर्थिक हित को साधने में कई बार दूसरों से टकराव हो जाता है। इसकी वजह यही है कि आज की तारीख में किसी भी देश के बाजार को दुनिया के बाकी बाजारों से अलग करके न तो देखा जा सकता है और न रखा जा सकता है। एक का असर दूसरे पर पड़ना तय है। यह जुड़ाव इतना मजबूत है कि ईरान में फटा कोई बम अमेरिका और भारत के शेयर बाजार को धड़ाम कर सकता है। ऐसे में इकॉनमिक नैशनलिज्म अपना थोड़ा रूप भी बदलता है। यह राष्ट्रवाद उस राष्ट्रवाद जैसा नहीं, जिसमें समझौते नहीं हो सकते। यहां मोल-तोल की भरपूर गुंजाइश है, बिल्कुल व्यापार की तरह। यही वजह है कि तमाम मुद्दों पर गतिरोध और एक-दूसरे की खुलेआम आलोचना के बावजूद चीन और अमेरिका के बीच व्यापार हो रहा है। इसी तरह, डोकलाम और गलवान जैसी घटनाओं के बाद भी भारत और चीन के व्यापारिक संबंध सामान्य बने हुए हैं। बल्कि, भारत के व्यापारिक साझेदारों में चीन टॉप में आता है। किसी और संदर्भ में यह स्थिति चौंका सकती है, लेकिन इकॉनमिक नैशनलिज्म में यह बिल्कुल संभव है। इसकी वजह है कि व्यापार अकेले नहीं किया जा सकता। आप अपने घर में बना कुछ भी सकते हैं, लेकिन बेचने के लिए खरीदार चाहिए।

एकदा

सुख की तलाश

प्राचीन यूनान में एक प्रसिद्ध दार्शनिक हुए सुकरात। उनके विचारों का पश्चिमी सभ्यता के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। एक दिन सुकरात अपने शिष्यों के साथ नगर में घूम रहे थे। तभी वे एक बड़े और आलीशान मकान के सामने से गुजरे। एक शिष्य ने कहा, 'देखो गुरुजी, यह घर कितना सुंदर है। इस बड़े घर में रहने वाला व्यक्ति कितना सुखी होगा और जीवन का आनंद उठा रहा होगा!' सुकरात मुस्कुराए और बोले, 'चलो, अंदर जाकर देखते हैं कि इस महल में रहने वाला व्यक्ति कितना सुखी है।' सुकरात और उनके शिष्य अंदर गए और घर के मालिक से मिले। वह एक अमीर आदमी था। उसने सबका स्वागत किया। उसके चेहरे पर चिंता की लकीरें दिख रही थीं। सुकरात ने पूछा, 'भाई सब ठीक तो है, बड़े परेशान दिख रहे हो।' उस व्यक्ति ने कहा, 'मैं बहुत दुखी हूं। मेरे पास सब कुछ है- धन, दौलत, शोहरत लेकिन फिर भी मुझे सुकून नहीं है।' सुकरात ने पूछा, 'तुम सुखी क्यों नहीं हो?' अमीर आदमी ने कहा, 'मुझे डर है कि मैं अपना धन खो दूंगा। मुझे डर है कि लोग मुझसे ईर्ष्या करेंगे और मुझे नुकसान पहुंचाएंगे।' सुकरात ने कहा, 'तुम्हारी समस्या यह है कि तुम सुख को भौतिक वस्तुओं में ढूंढ रहे हो। सच्चा सुख तो संतोष में है।' उन्होंने आगे कहा, 'देखो, मेरे पास न तो कोई घर है, न ही कोई धन। लेकिन मैं संतुष्ट हूं और इसलिए मैं सुखी हूं।' उसने पूछा, 'जीवन में संतोष लाने के लिए क्या करना चाहिए।' सुख और आराम को जब तक समेटते रहोगे, संतोष से दूर होते जाओगे। सुख के इन साधनों को जरूरतमंदों में बांटकर देखो और उसके साथ उस हसीन पल में साथ होकर देखो, तुम संतोष को पा लोगे। उस व्यक्ति को सुकरात की बातें जंच गईं।

Subrata Dhar

संकलन : दिलीप लाल

मिशनरी स्कूलों में यह बदलाव क्यों हुआ

Missionary

कैथलिक बिशप कॉन्फ्रेंस का ईसाई प्रतीक न लादने का संकल्प सराहनीय है

Catholic

प्रतीक्षा पटवारी

कैथलिक ईसाई मिशनरियों ने हाल में अपनी शिक्षण संस्थाओं में ईसाई प्रतीकों को गैर-ईसाई छात्रों पर न थोपने का फैसला किया है। भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और शिक्षा के क्षेत्र में यह एक बड़ा बदलाव माना जाना चाहिए। इससे अन्य धर्मों के छात्रों के प्रति समभाव और समन्वय को दिशा मिलेगी। यह एक अनुकूल संकेत लगता है। फिर भी इसे लागू करने के लिए उतनी ही प्रतिबद्धता भी जरूरी है।

बदलाव की शुरुआत | कैथलिक बिशप्स कॉन्फ्रेंस ऑफ इंडिया (CBCI) ने बेंगलुरु में हुई अपनी एक बैठक में पहली बार इस तरह का फैसला किया है। इसके तहत कैथलिक शिक्षा संस्थाओं में अब सुबह की प्रार्थना में संविधान की प्रस्तावना पढ़ी जाएगी। प्रवेश द्वार पर भी उसे प्रमुखता से लगाया जाएगा। गैर-ईसाई लोगों के लिए अलग से सर्वधर्म समभाव प्रार्थनालय होगा। CBCI ने खुद कहा है कि देश के वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रवाह के साथ समन्वय की दृष्टि से यह कदम उठाया गया है।

ब्रिटिश राज की देन | ब्रिटिशों के भारत में स्थापित होते ही देश में ईसाई मिशनरी शिक्षा के क्षेत्र में हावी हो गए। उन्हें धर्म प्रचार तो करना ही था, ब्रिटिश राज के लिए कर्मचारी भी तैयार करने थे। इसी लक्ष्य के चलते कैथलिक मिशनरियों ने भारी संख्या में स्कूल-कॉलेज स्थापित किए। उनकी शीर्ष संस्था CBCI की 1944 में बेंगलुरु में स्थापना हुई थी। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है।

अच्छी पहल

- प्रार्थना के बजाय पढ़ी जाएगी संविधान की प्रस्तावना
- दूसरे धर्म के बच्चों पर नहीं थोपे जाएंगे ईसाई प्रतीक
- अभिभावकों के संघर्ष से बना है CBCI पर दबाव

लंबा फैला जाल | CBCI के तहत भारत में कैथलिक शिक्षा संस्थाओं का विशाल संजाल फैला है। 14000 स्कूल, 650 कॉलेज, 7 विश्वविद्यालय, 450 तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थाएं और 5 मेडिकल कॉलेज हैं। इन आंकड़ों से अंदाजा लग जाता है कि भारतीय समाज में मिशनरी शिक्षा कितनी गहरी पैठ बना चुकी है।

धर्म का प्रचार | ईसाई मिशनरी स्कूलों की चर्चा होते ही सेंट पॉल, सेंट स्टीफन्स , सेंट जेवियर्स, डॉन बॉस्को जैसे नाम और उसमें पढ़ते अंग्रेजी बोलने वाले लड़के-लड़कियां सामने आते हैं। ब्रिटिश राज के दौरान ये स्कूल-कॉलेज बने थे। अमूमन इन्हें पादरी या नन चलाते थे। कैंपस में चर्च होना जरूरी था। इन शैक्षणिक संस्थाओं का उद्देश्य शिक्षा के साथ-साथ ईसाई धर्म और संस्कृति का प्रचार करना भी था। शायद इसी कारण ईसाई प्रतीकों पर इन शिक्षा संस्थाओं में बल दिया जाता था और अन्य धर्मों के प्रतीक निषिद्ध माने जाते थे। ब्रिटिश राज में ऐसा चलन समझ में आता है, लेकिन आजाद भारत में नहीं। अब उसमें सुधार की पहल हुई है।

विरोध की आवाज | CBCI की शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों में भारतीय शिक्षा प्रणाली या भारतीय मूल्यों, संस्कृति का कहीं भी समावेश न होने से भारतीय अभिभावकों और कुल मिलाकर बहुसंख्य समाज में असंतोष था। विरोध की छोटी-बड़ी घटनाएं होती थीं, लेकिन बदलाव के लिए सामाजिक-राजनीतिक स्थिति उस समय अनुकूल नहीं थी।

भारतीयों को सजा | मिशनरी स्कूलों में दूसरे धर्मों के बच्चे ज्यादा पढ़ते हैं। लड़के- लड़कियां अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण हाथ में धागा, माथे पर कुमकुम या तिलक लगाते हैं, चूड़ियां या कड़ा पहनते हैं। अब तक स्टूडेंट्स पर पाबंदी थी कि वे अपने धार्मिक चिह्न पहन स्कूल में नहीं आ सकते। इसके लिए उन्हें कभी-कभी सजा भी दी जाती थी। कोई भी भारतीय पर्व या त्योहार स्कूल में नहीं मनाए जाते थे।

त्रिपुरा का पहलू | CBCI के पूर्व के नियमों के अनुसार, ईसाई स्कूल में केवल ईसाई प्रतीक का इस्तेमाल हो सकता था। धार्मिक पुस्तकों में केवल बाइबल पढ़ सकते थे। कभी-कभी दूसरे धर्मों के बच्चों को ईसाई रीति-रिवाजों को अपनाने के लिए बाध्य किया जाता। इसे लेकर स्कूलों और अभिभावकों में दिन-ब-दिन संघर्ष बढ़ रहा था। त्रिपुरा में हिंदू संगठन द्वारा मिशनरी स्कूलों की धार्मिक नीतियों का विरोध हुआ। शायद इसी दबाव के चलते मिशनरी संस्थान बदलाव के लिए अग्रसर हुए।

AI Image

बदलाव के लिए बाध्य | CBCI को शायद अंदाजा हो गया कि अगर ऐसे ही संघर्ष बढ़ता रहा तो मिशनरियों का बुनियादी शैक्षणिक और सांस्कृतिक ढांचा बिखर जाएगा। भविष्य में इसके छात्रों की संख्या पर भी असर हो सकता है। कुल मिलाकर लगभग 200 वर्षों तक एक लीक पर चलने वाली मिशनरियों को भारतीय समाज ने बदलाव के लिए बाध्य कर दिया। यहां तक आने में समय बहुत जाया गया, लेकिन बदलाव सुखद है।

बदलने की कोशिश | CBCI का मानना है कि कैथलिक चर्च एक स्वस्थ समाज के पक्षधर हैं। वे राष्ट्र-निर्माण, जनकल्याण की सरकारी योजनाओं के संवर्धन में योगदान करने के साथ ही अन्य धर्मों के लोगों के साथ सौहार्द स्थापित करना चाहते हैं। वे संविधान की प्रस्तावना का अपनी शिक्षण संस्थाओं में गायन कर मुख्यधारा में आना चाहते हैं।

सवाल कायम | स्वाभाविक है कि मिशनरी स्कूलों को भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता का आदर करना चाहिए। ईसाई मिशनरी शिक्षा प्रणाली की इस पहल का स्वागत होना चाहिए। लेकिन, ईसाई मिशनरियों के इस कथित भारतीयकरण अभियान को लेकर यह सवाल अब भी कायम है कि क्या वे शिक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित रहेंगे या मतांतरण, अन्य धर्मों के लोगों पर ईसाई संस्कृति को थोपने, विदेशी फंड और विचारों से दूरी बनाए रख संपूर्ण भारतीयता की दिशा में भी आगे बढ़ेंगे?

(लेखिका भारतीय विचार मंच, विदर्भ प्रांत की सहसंयोजक हैं)

आमने-सामने

देखना होगा, कहीं किसी दबाव का नतीज़ा तो नहीं है मिशनरी स्कूलों का फैसला

अनिल सिन्हा

भारत में कैथलिक ईसाइयों की सर्वोच्च संस्था कैथलिक बिशप कॉन्फ्रेंस की नई गाइडलाइंस से एक बड़ी बहस शुरू हो गई है। संघ परिवार के संगठन इस बात से खुश हैं कि उनके अभियान को पहली सफलता मिली है। वे आरोप लगाते रहे हैं कि मिशनरी स्कूल भारतीय धर्म और संस्कृति को नष्ट करने का काम करते हैं। बिशप कॉन्फ्रेंस ने कैथलिक मिशनरियों के स्कूलों से कहा है कि वे स्कूल में प्रार्थना की जगह भारतीय संविधान की प्रस्तावना का पाठ करें और स्कूल के प्रवेशद्वार पर इस प्रस्तावना को प्रमुखता से दिखाएं। इसमें यह निर्देश भी है कि एक प्रार्थनागृह बने, जो अंतरधार्मिक हो। बिशप कॉन्फ्रेंस का कहना है कि उनके अधिकतर छात्र अलग-अलग धर्मों से आते हैं और उनके लिए यह जरूरी है कि स्कूल में इसका ध्यान रखा जाए।

आधुनिक और प्रगतिशील | कैथलिक मिशनरियों के फैसले का स्वागत इस लिहाज से जरूर होना चाहिए कि उन्होंने अपने ऊपर हो रहे हमलों के विरोध के लिए आधुनिक और प्रगतिशील रास्ता चुना है। किसी कट्टरपंथी और संकीर्ण खोल में घुस जाने की कोशिश नहीं की। उनके यहां आवाज भी उठ रही है कि संविधान की धारा 30 के तहत अल्पसंख्यकों को अपने स्कूल चलाने के अधिकार मिले हुए हैं। इसलिए RSS के दबाव में इस अधिकार को छोड़ने वाले कदम नहीं उठाए जाने चाहिए। लेकिन उन तबकों का भी कहना है संविधान की प्रस्तावना के पाठ का फैसला बेहतरीन है और यह हिंदू स्कूलों में भी किया जाना चाहिए।

अकबर की परंपरा | सर्वधर्म प्रार्थना के आयोजन का फैसला भी गौर करने लायक है। यहां यह बता देना चाहिए कि इसकी जड़ें सम्राट अकबर की फतेहपुर सीकरी में आयोजित उन अंतरधार्मिक संवादों में मिलती हैं, जिनमें सभी धर्मों के गुरुओं को बुलाया जाता था। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन का कहना है कि जिस समय पश्चिमी जगत क्रूसेड यानी धर्मयुद्ध में लगा था, अकबर धर्मों के बीच संवाद कराने में मशगूल थे। आजादी आंदोलन के दौर में महात्मा गांधी ने अपनी प्रार्थना सभाओं को सर्वधर्म प्रार्थना का स्वरूप दे रखा था।

फैसले की टाइमिंग | बिशप कॉन्फ्रेंस के इस फैसले का समय गौरतलब है। खुद कॉन्फ्रेंस ने कहा है कि स्कूलों को मौजूदा धार्मिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक परिस्थितियों के कारण आ रही चुनौतियों का सामना करना है।

स्कूलों को अल्टिमेटम | पिछले दिनों पूर्वोत्तर के एक सांप्रदायिक संगठन ने मिशनरी स्कूलों को अल्टिमेटम दिया था कि पंद्रह दिनों के भीतर स्कूल धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल बंद कर दें। उन्होंने स्कूलों से जीसस की मूर्तियां हटाने को कहा था। क्या यह सवाल नहीं उठता कि भारत जैसे सेकुलर और लोकतांत्रिक देश में इस तरह के दबाव कितने सही हैं? दिलचस्प तो यह है कि मिशनरी स्कूलों से धार्मिक प्रतीकों को हटाने की मांग करने वाले संविधान की दुहाई देते हैं और इन प्रतीकों को संविधान विरोधी बताते हैं। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यकों के अपना स्कूल चलाने के अधिकार को वे भूल जाते हैं।

मिशनरी स्कूलों से पहले | देश में पश्चिमी शिक्षा की शुरुआत मिशनरी स्कूलों ने नहीं की। यहां मिशनरी स्कूल शुरू होने के पहले ही राजा राममोहन राय ने पश्चिमी शिक्षा देने के लिए 1817 में कोलकाता (उस समय कलकत्ता) में हिंदू कॉलेज की स्थापना की थी। बिशप कॉलेज की स्थापना 1820 में हुई। ईस्ट इंडिया कंपनी ने तो मिशनरी स्कूलों की स्थापना पर पाबंदी लगा रखी थी। उसे डर था कि स्कूलों के जरिए मिशनरी स्थानीय धर्म से छेड़छाड़ कर सकते हैं और जनता इससे नाराज हो सकती है। उसने मिशनरी स्कूल खोलने की इजाजत साल 1843 में दी।

पहले से रहा है विरोध

- मिशनरी स्कूलों को मिल रहा था अल्टिमेटम
- मिशनरियों ने मॉडर्न, प्रोग्रेसिव रास्ता चुना
- माइनॉरिटी के अधिकारों की सुरक्षा भी जरूरी

रामकथा पर किया काम | गौर करने की बात है कि भारत के राष्ट्रवादी नायक हेनरी डेरोजियो बिशप कॉलेज के छात्र थे। उन्होंने यंग बंगाल आंदोलन के जरिए देशभक्ति का अलख जगाया। ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जिनसे जाहिर होता है कि ईसाई या इस्लाम की शिक्षा राष्ट्रवादी होने से नहीं रोकती है। हाल के उदाहरणों में फादर कामिल बुल्के हैं, जो बेल्जियम में पैदा हुए थे और धर्म प्रचारक के रूप में भारत आए थे। रामकथा, तुलसी और वाल्मीकि पर उनका काम उन्हें अमर बना गया। भारतीय संस्कृति को फिर से खोजने में मिशनरी स्कूलों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

धर्मांतरण से जुड़ा भ्रम | एक और भ्रम का निवारण जरूरी है कि मिशनरी स्कूलों के जरिए धर्मांतरण संभव है। इसके उदाहरण हैं कि धर्मांतरण की अफवाह के कारण कुछ स्कूलों को बंद करने की नौबत आ गई और उन्हें इस धारणा को मिटाने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी। क्या इस देश के सामान्य लोग धर्मांतरण की कोशिश को बर्दाश्त कर सकते हैं? आज देश में कॉन्वेंट स्कूलों की बाढ़ आई हुई है। कैथलिक मिशनरियों के ही नियंत्रण में 14000 स्कूल हैं। हमने कभी नहीं सुना कि किसी स्कूली पढ़ाई के कारण धर्मांतरण हुआ। धर्मांतरण के कई अन्य कारण रहे हैं। सबसे बड़ा कारण गरीबी है। कई बार शिक्षा, स्वास्थ्य और बेहतर जीवन की उम्मीद ने लोगों को धर्म बदलने के लिए प्रेरित किया है। मिशनरियों के सेवाभाव से भी लोग प्रभावित होते रहे हैं।

व्यवहार में दोहरापन | इसे भी समझना जरूरी है कि धर्मांतरण के विरोधियों के व्यवहार में एक दोहरापन है। अमेरिका और यूरोप में मंदिरों के निर्माण और दूसरे धर्म के लोगों के आने से वे आनंदित होते हैं, पर भारत में चर्च या मस्जिदों को लेकर उनका रवैया एकदम अलग है। सवाल है, क्या इस रवैये के पीछे किसी खास राजनीतिक सोच की भूमिका है, जिसमें अल्पसंख्यक निशाने पर होते हैं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

विशुद्ध राजनीति – पॉलिटॉक

न्याय दें या गारंटी

कांग्रेस में इस बार बहुत ही गंभीर मंथन हुआ कि उनके चुनावी वादे का नाम क्या रखा जाए- न्याय या गारंटी? कई लोग इस पक्ष में थे कि गारंटी शब्द से जनता का कनेक्ट अधिक हो रहा है। इसके लिए हिमाचल प्रदेश और कर्नाटक विधानसभा चुनाव की मिसाल भी दी गई। कहा गया कि गारंटी शब्द से जनता अधिक जुड़ती है। लेकिन दूसरा वर्ग न्याय शब्द के पक्ष में था। उनका तर्क था कि अगर लोगों से संवाद करें तो न्याय शब्द अधिक जुड़ेगा। दिलचस्प बात है कि कांग्रेस न्याय और गारंटी के बीच उलझी रही और नरेंद्र मोदी की अगुवाई में BJP ने गारंटी को अपना चुनावी वादा बना लिया। मोदी की गारंटी को चुनाव में BJP ने अपना पंच बना लिया। अब इसे लेकर जो गारंटी शब्द के समर्थन में थे, वे दबी जुबान में शिकायत कर रहे हैं कि कांग्रेस खुद ही बेहतर चीजों को आगे बढ़ाने में विफल हो जाती है, और BJP ने उस शब्द को भी हथिया लिया जिसे कांग्रेस ने ही स्थापित किया था। जब BJP ने गारंटी शब्द का प्रयोग करना शुरू कर दिया तो कांग्रेस के लिए न्याय का ही विकल्प बच गया था। न्याय के पक्ष में राहुल गांधी के करीबी नेता शामिल थे। जबकि गारंटी के पक्ष में अधिकतर राज्य के नेता और दूसरे रणनीतिकार थे।

सर्वे की मानें या ना मानें

आम चुनाव में इस बार दो राज्य सबसे अधिक फोकस में है - महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल। खासकर BJP इन दोनों राज्यों के लिए बहुत सतर्क है। वहां के हालात पर बहुत ही बारीक नजर रखी जा रही है। पार्टी ने यहां इंटरनल सर्वे के कई दौर चलाए। दिलचस्प बात है कि सर्वे के नतीजे हर बार मिले-जुले ही आए। इससे पार्टी की उलझन और बढ़ गई। माना जा रहा है कि इन दोनों राज्यों के नतीजे ही आम चुनाव के परिणाम को अंतिम दिशा देंगे। विपक्ष उम्मीद कर रहा है कि BJP को 2019 के मुकाबले यहां कम सीटें मिलेंगी तो BJP कम से कम 25 सीट पाने की उम्मीद कर रही है। हालांकि एक और सर्वे में वहां कई सीटों पर कड़ा मुकाबला बताया जा रहा है। महाराष्ट्र में BJP की चिंता अपने सहयोगी दलों के प्रदर्शन को लेकर है, जिनके बारे में सर्वे में कोई बहुत उत्साहवर्धक संकेत नहीं दिखे हैं।

भाषण से प्रवचन तक

बिहार में पिछले कुछ सालों से एक दिलचस्प सियासी ट्रेंड देखा जा रहा है। कुछ IAS और IPS अफसर राजनीति में शामिल होकर नाम बनाने के लिए चुनावी जंग में मेहनत तो पूरी करते हैं, लेकिन चुनाव से ठीक पहले उनकी किस्मत दगा दे जाती है। ऐसा सभी राजनीतिक दलों में हो रहा है। अगर इसी आम चुनाव की बात करें तो कम से कम आधा दर्जन अधिकारी टिकट पाने की उम्मीद में राजनीति में आए थे, लेकिन जिस राजनीतिक दल से उन्हें उम्मीद थी, उससे निराशा मिली। इनमें एक सीनियर IPS अधिकारी तो VRS लेकर चुनाव लड़ने आ गए थे। दो पूर्व DGP भी चुनाव लड़ने की रेस में थे। एक मौजूदा IPS तो पिछले तीन साल से लगातार इसी वजह से सक्रिय थे कि इस बार चुनाव में उन्हें टिकट मिलता। वह इस्तीफा देने को भी तैयार थे। इन सबको निराशा ही हाथ लगी। दो सीनियर IAS अधिकारियों के साथ भी ऐसा ही हुआ। याद होगा कि पिछले बिहार विधानसभा चुनाव में किस तरह एक पूर्व DGP के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ था। बाद में वह इतने दुखी हुए कि राजनीति को स्थायी रूप से छोड़कर प्रवचन की दुनिया में आ गए।

माया ने उलझाया

इस बार उत्तरप्रदेश में मायावती के रुख से सभी पार्टियां उलझन में हैं। अमूमन माना जा रहा था कि मायावती के अकेले लड़ने से SP यानी समाजवादी पार्टी को अधिक नुकसान होगा। 2022 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में BSP ने SP को कई सीटों पर नुकसान भी पहुंचाया था। तब कई मुस्लिम उम्मीदवार उतारे थे मायावती ने। लेकिन इस बार अंतिम समय में मायावती के रुख ने SP-BJP दोनों को उलझा कर रख दिया है। अब तक BSP ने जितने टिकट बांटे हैं, वे सिर्फ SP नहीं बल्कि BJP के लिए भी चिंता की बात है। मायावती ने कम से कम एक दर्जन सीटों पर ऐसे उम्मीदवार उतार दिए हैं, जिससे BJP की चिंता बढ़ी है। वहीं ऐसी सीटें भी हैं जहां SP के लिए चिंता की बात है। साथ ही BSP का कैंपेन भी दोनों दलों पर समान रूप से हमलावर है। मायावती के बदले तेवर ने SP-BJP दोनों दलों के समीकरणों को प्रभावित कर दिया है।

गुटबाजी से क्या होगा

राजस्थान में कांग्रेस के अंदर अशोक गहलोत बनाम सचिन पायलट के बीच गुटबाजी का नुकसान पार्टी को उठाना पड़ रहा था। लेकिन इस आम चुनाव में गुटबाजी वायरस कांग्रेस के साथ-साथ BJP को भी परेशान करने लगा है। कई सीटों पर BJP के अंदर खेमेबाजी साफ दिखाई देने लगी है। यह बात केंद्रीय नेतृत्व तक भी पहुंची। इस बात से खुद पीएम नरेंद्र मोदी नाराज हुए। उन्होंने राजस्थान के अपने दौरे में गुटबाजी में जुटे नेताओं को स्पष्ट चेतावनी दी डाली कि लोग पार्टी के नाम पर वोट देते हैं और गुटबाजी में शामिल रहे तो उनका ही नुकसान होगा। उन्होंने राजस्थान में अपनी रैलियों में भी परोक्ष रूप से जनता के बीच संदेश दिया कि उनके लिए नेता से अधिक महत्वपूर्ण लोगों का सपोर्ट है। दरअसल राजस्थान सहित अधिकतर जगहों पर उसे वोट मोदी के नाम पर ही पड़ता है। इसलिए पार्टी को लगता है कि इस गुटबाजी का कोई फर्क चुनाव परिणाम पर नहीं पड़ेगा।

AI Imges

रीडर्स मेल

www.edit.nbt.in

■ नक्सलवाद बड़ी समस्या

19 अप्रैल का संपादकीय 'माओवादियों को झटका' पढ़ा। छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में दो दिन पहले सुरक्षा बल की टीम ने माओवादियों पर बड़ी कार्रवाई की। पूरा बस्तर क्षेत्र दशकों से नक्सलवाद से जूझ रहा है। इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन और आदिवासी आबादी की उपेक्षा ने नक्सलवाद को पनपने का मौका दिया है। बस्तर का घना जंगल नक्सलियों को छिपने और गतिविधियां चलाने में मदद करता है। क्षेत्र में गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी ने लोगों में असंतोष पैदा किया है, जिसका फायदा नक्सली उठाते हैं। हाल के वर्षों में सरकारी योजनाओं की बदौलत हालत में कुछ सुधार देखने को मिला है। लेकिन बड़े स्तर पर काम करने की जरूरत है।

मोहित श्रीवास्तव, ईमेल से

■ संवाद में हो संतुलन

यह पत्र 17 अप्रैल के लेख 'आपकी चुप्पी भी किसी को चोट पहुंचा सकती है' से संबंधित है। मुखर होना कई मामलों में सकारात्मक है। यह लोगों को अपनी बात रखने, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने और सामाजिक बदलाव लाने का मौका देता है। सोशल मीडिया और अन्य प्लैटफॉर्म्स ने इस बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन कई बार मुखरता की अधिकता असहज स्थिति पैदा कर सकती है। हर बात पर तुरंत प्रतिक्रिया देने का दबाव अच्छा नहीं होता। ऐसे में ऑनलाइन ट्रोलिंग और व्यक्तिगत हमलों का डर तो बना ही रहता है। चुप रहना भी कई बार तनावपूर्ण हो जाता है। इसलिए जरूरत के हिसाब से संवाद के दोनों तरीकों को अपनाया जाना चाहिए।

गौरिका कपूर, ईमेल से

■ बेंगलुरु में जलसंकट

बेंगलुरु को भारत की सिलिकॉन वैली कहा जाता है, लेकिन यहां पानी की कमी बड़ी समस्या हो गई है। इसे कभी 'झीलों के शहर' के रूप में जाना जाता था, पर पिछले कुछ दशकों में कई झीलें अतिक्रमण और प्रदूषण की भेंट चढ़ गईं। अब भूजल का बेहिसाब दोहन हो रहा है। अधिकांश वर्षा का पानी नालों में बह जाता है, जिसका उपयोग नहीं हो पाता। सरकार और वहां के नागरिकों को मिलकर काम करना होगा, तभी कोई रास्ता निकलेगा।

प्रशांत रावत, ईमेल से

nbtedit@timesgroup.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

अंतिम पत्र

अमेठी में चुनाव प्रचार संभालने वाले एक नेता का कांग्रेस से मोहभंग – एक खबर

– ऐन चुनाव के वक्त हुए इस मोहभंग का राज क्या है!

प्रमिला राणा

काल और स्थान की सीमा से परे हैं महावीर के सिद्धांत

के.सी. जैन

महावीर उच्चतम कोटि के वैज्ञानिक थे। वैज्ञानिक प्रकृति के नियमों को समझ उनकी व्याख्या को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। महावीर ने भी यही किया। उन्होंने प्रकृति के सार्वभौमिक शाश्वत नियमों की व्याख्या हमारे सामने प्रस्तुत की, जो हमारे शांत और सुखमय जीवन के लिए अनिवार्य है। ये नियम सार्वभौम हैं क्योंकि वे किसी स्थान अथवा मान्यता विशेष के कारण बदलते नहीं, और शाश्वत हैं क्योंकि उन पर काल का प्रभाव नहीं होता। यदि हमें महावीर को समझना है तो प्रकृति के विज्ञान को समझना होगा। महावीर का दर्शन दर्शन था अनेकांत। अनेकांत का तात्पर्य है कि इस ब्रह्मांड में कुछ भी एकांगी नहीं है। हर सत्य को हर व्यक्ति अपनी-अपनी अपेक्षा अनुसार अपने-अपने तरीके से देखता है और उसकी असंख्य रूपों में असंख्य प्रकारों से विवेचना की जा सकती है।

यह कहना कि केवल यही सत्य है, यह एकांगी है। उदाहरण के तौर पर यदि हम किसी एक वस्तु का रंग भी लें तो यह कहना कि यह नीला ही है, पूर्ण सत्य नहीं होगा क्योंकि नीले रंग के भी अनेक भेद हैं। जो रंग मैं देख रहा हूं, वही नीला है और दूसरा व्यक्ति जिस रंग को देख रहा है, वह नीला नहीं है यह केवल विवाद को जन्म देगा, सत्य का प्रतिपादन नहीं करेगा। यदि अहिंसा की चर्चा करें तो प्रकृति की व्यवस्था है कि जीवन में विकास के लिए संघर्ष आवश्यक है और जो भी जितना संघर्ष करता है उसका उतना ही विकास होता है।

जो संघर्ष छोड़ देता है वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। उसका एक बहुत छोटा सा उदाहरण हम यह कह सकते हैं कि यदि हम व्यायाम छोड़ देते हैं तो हमारा शरीर कमजोर पड़ना प्रारंभ हो जाता है और समुचित व्यायाम करते हैं तो हम स्वस्थ होने की दिशा में आगे बढ़ते हैं परंतु इस संघर्ष का तात्पर्य किसी अन्य जीव के साथ विरोध नहीं है। अन्य के संदर्भ में प्रकृति का नियम सामंजस्यपूर्ण सह अस्तित्व है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि मनुष्य के अतिरिक्त प्रकृति के जितने भी प्राणी हैं वे इस नियम का पालन करते हैं। जंगल में शेर केवल अपनी भूख मिटाने के लिए हिंसा करता है। उसके बाद वह सबके साथ शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के साथ रहता है। प्रकृति ने भी उसी अनुपात में जीवों की व्यवस्था कर रखी है जिससे सबकी आवश्यकता की पूर्ति भी होती रहे और कोई भी प्रजाति विलुप्त न हो। किंतु मनुष्य ऐसा नहीं करता। पहले वह अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाता है और फिर प्रकृति का विनाश करता है। यही हिंसा है और यही विनाश का द्वार खोलती है। महावीर के अन्य सिद्धांत भी इन्ही प्रकृति के नियमों का एक स्पष्टीकरण मात्र हैं। अतः महावीर के अनुयायी उनके दिखाए मार्ग को चाहे जैन धर्म के नाम से पुकारते हैं और यह विश्व में जैन धर्म के नाम से प्रचलित हो, किंतु न तो महावीर ने अपने उपदेशों को जैन धर्म का नाम दिया और न ही इन नियमों को उन्होंने किसी परंपरा अथवा किसी समय की सीमा में बांधा था। वैज्ञानिक जब इन नियमों को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं तो हम उसे विज्ञान का अथवा फिजिक्स का नाम देते हैं इस दृष्टिकोण से महावीर उच्चतम कोटि के वैज्ञानिक थे ।

THE SPEAKING TREE
और पढ़ने के लिए देखें
hindi.speakingtree.in

महावीर के एक अन्य सिद्धांत सत्य के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। प्रकृति का नियम है कि जैसे ही कोई झूठ बोलेगा, लाई डिटेक्टर टेस्ट में वह पकड़ में आ जाएगा। क्योंकि झूठ बोलते ही हमारे भीतर एक अलग तरह का प्रभाव होता है और हमारा मस्तिष्क एक अलग तरह की तरंगों को छोड़ता है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि प्रकृति का नियम यही है।

हमें प्रकृति के इन सिद्धांतों का पालन करना है और इसी का नाम है महावीर की परंपरा का पालन। हम महावीर के दर्शन को परंपराओं में बांधकर नहीं शाश्वत सार्वभौमिक नियम के रूप में देखेंगे तभी उनका चिंतन उनका दर्शन सार्थक हो पाएगा ।

(लेखक अध्यात्म साधना केंद्र के निदेशक हैं)

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा **टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद** और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाउनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्सः 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कॉपी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु. संपादक (दिल्ली मार्केट) : आशीष पांडे (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 54

चुनावों में भरोसा

देश में आम चुनावों के लिए आज पहले चरण का मतदान हो रहा है। यह एक बड़ी कवायद है जिसे पूरा करने में कई सप्ताहों का समय लगता है और देश भर में कई चरणों में ये चुनाव होने हैं। पहले चरण में कुल 543 लोक सभा सीट में से 102 में मतदान हो रहा है। मतदान की तुलना में मतगणना का काम काफी तेजी से होता है। बीते दो दशकों से मतगणना का काम बहुत सहज और सुरक्षित ढंग से होता रहा है और इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) का इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस मामले में हम अन्य बड़े लोकतांत्रिक देशों से अलग हैं। जैसा कि हमने 2020 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में भी देखा, धीमी मतगणना हारने वालों को यह अवसर देती है कि वे चुनाव नतीजों पर सवाल उठा सकें। कहा जा सकता है कि ईवीएम ने भारत में चुनाव नतीजों की विश्वसनीयता में सुधार किया है। बहरहाल, सर्वोच्च न्यायालय कुछ प्रतिष्ठित गैर सरकारी संगठनों की एक याचिका पर सुनवाई कर रहा है जिनका कहना है कि अगर कागजी मतपत्रों पर मतदान की प्रक्रिया दोबारा शुरू नहीं हो सकती है तो भी कम से कम यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि हर इलेक्ट्रॉनिक वोट के बाद निकलने वाली कागज की पर्ची की अलग से गिनती की जाए। दो दिन की सुनवाई के बाद न्यायालय ने फिलहाल अपना फैसला सुरक्षित रखा है। न्यायालय के निर्णय को लेकर किसी भी पूर्वग्रह से इतर यह समझने की आवश्यकता है कि वादियों के तर्क पर अधिक जोर देश की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को खतरे में डाल सकता है।

न्यायाधीशों ने उचित ही इस पर ध्यान दिया है कि ईवीएम के प्रचलन से पहले कागजी मतपत्रों से होने वाले मतदान के दौर में चुनावों में अक्सर गड़बड़ियां होती थीं। चुनाव आयोग ने कहा है कि मतदान के बाद निकलने वाली सभी पर्चियों यानी वेरिफाइड पेपर ऑडिट ट्रेल्स (वीवीपैट्स) की गणना में कई दिनों या सप्ताहों का समय भी लग सकता है। फिलहाल किसी भी लोक सभा क्षेत्र में बिना किसी क्रम के पांच फीसदी वीवीपैट की गणना की जाती है। इस मामले में वादियों का कहना है कि जर्मनी जैसे कुछ देश इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग के बाद दोबारा मत पत्रों से चुनाव कराने की व्यवस्था की ओर लौट गए हैं। परंतु संबंधित निर्णय देने वाली जर्मनी की संवैधानिक अदालत ने इस सिद्धांत के आधार पर ऐसा किया कि इस प्रक्रिया में गैर विशेषज्ञों द्वारा सार्वजनिक ऑडिट की संभावना की इजाजत होनी चाहिए। वीवीपैट में यह व्यवस्था है। पारदर्शिता के सिद्धांत का मान रखने के लिए प्रक्रिया के और अधिक ब्योरे का इस्तेमाल किया जा सकता है तथा ज्यादा संख्या में ऑडिट की व्यवस्था की जा सकती है। इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग को पूरी तरह नकारने की जरूरत नहीं है।

चुनाव हारने वाले नेता चाहे जिस दल के हों, वे ईवीएम को दोष देना पसंद करते हैं। परंतु अगर निष्पक्ष होकर देखा जाए तो यह संदेह निर्मूल है। ईवीएम के दौर में सभी प्रमुख दल चुनाव जीतते और हारते हैं। कई राज्य सरकारें ऐसे दलों की है जो केंद्र में विपक्ष में हैं। देश भर में राज्य सरकारों के कर्मचारी ही चुनाव कराते हैं। यह कई मायनों में बंटी हुई कवायद है। इस मामले में वादियों का यह कहना शायद सही हो सकता है कि नई वीवीपैट मशीनों के निर्माण और बैलेट मशीनों से इनके जुड़ाव के तरीके की वजह से व्यवस्था में कमजोरी आई हो सकती है। इससे अदालत और चुनाव आयोग निपट सकते हैं। परंतु इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग को लेकर व्यापक संदेह नहीं किया जा सकता है जब तक कि ऐसा संकेत देने के लिए समुचित आंकड़े न हों। जो लाखों भारतीय आज मतदान करेंगे उन्हें चुनाव प्रक्रिया में भरोसा है। उनमें से कुछ के लिए यह अपना भविष्य तय करने का इकलौता तरीका है और वे इसकी कद्र करते हैं। बिना ठोस प्रमाण के उनके मन में इस व्यवस्था के प्रति अविश्वास पैदा करना अनुचित होगा। ईवीएम को हमेशा बलि का बकरा नहीं बनाया जा सकता है।

बिनय सिन्हा

म्यांमार के हालात और क्षेत्रीय सुरक्षा का प्रश्न

म्यांमार में छिड़े गृह युद्ध के बीच वहां से लोगों का भारत आना जारी है। ऐसे में अब शायद वक्त आ गया है कि हम सैन्य शासन को दिए जा रहे लगातार समर्थन की समीक्षा करें। बता रहे हैं श्याम सरन

म्यांमार एक महत्त्वपूर्ण पड़ोसी है। भारत की सुरक्षा और बेहतरी में उसकी अहम भूमिका है। दोनों देशों के बीच 1,400 किलोमीटर लंबी सीमा है। भारत में पूर्वोत्तर के चार संवेदनशील राज्य-अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मणिपुर और मिजोरम इस सीमावर्ती देश से लगे हुए हैं। दोनों देशों की सीमा के इधर और उधर समान जातीय समूहों के लोग रहते हैं। नगा, कुकी और मिजो (इन्हें म्यांमार में चिन कहा जाता है) दोनों देशों में बसे हुए हैं। देश के पूर्वोत्तर इलाके में दशकों तक व्याप्त रही अशांति के दौरान नैशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड (खपलांग) अथवा एनएससीएन-के, यूनाइटेड लिबरल फ्रंट ऑफ असम (उल्फा) और कुकी नैशनल काउंसिल ने सीमा पार म्यांमार में अड्डा बनाए रखा।

सन 1980 तक म्यांमार ही वह रास्ता था जिसकी मदद से भारत के विद्रोही समूह दक्षिणी चीन के युन्नान से हथियार और सैन्य प्रशिक्षण हासिल करते। भारत द्वारा सन 1990 के दशक में मिलिट्री जुंटा यानी सैन्य शासन (तमरॉ) से संपर्क कायम करने की एक वजह पूर्वोत्तर की अशांति से निपटना और देश में चीन के बढ़ते प्रभाव का मुकाबला करना भी था। इसका अर्थ यह था कि पहले जहां भारत की नीति आंग सान सू ची तथा उनकी नैशनल लीग ऑफ डेमोक्रेसी (एनएलडी) का समर्थन करने की थी, उसे अब स्थगित करना था। तब से भारत के बुनियादी रुख में कोई बदलाव नहीं आया है। 2016 में जब देश में आंशिक रूप से लोकतंत्र कायम हुआ और अंग सान सू ची उसकी राजनीतिक नेता बनीं (उन्होंने स्टेट काउंसलर का पद संभाला), तब भी भारत ने जुंटा के साथ मजबूत रिश्ता कायम रखा और देश में उसकी ताकत और भूमिका को मान्यता दी। इसमें इस बात से भी मदद मिली कि खुद सू ची ने परदे के पीछे सेना की ताकतवर भूमिका को स्वीकार किया। 2021 के चुनावों में जब एनएलडी को जबरदस्त जीत हासिल हुई और ऐसी संभावना बनी कि लोकतांत्रिक बदलाव की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी तब सेना प्रमुख मिन अंग हलाइंग के अधीन सैन्य शासन ने तख्तापलट किया और चुनाव नतीजों को अवैध घोषित करते हुए सू ची समेत राजनेताओं को गिरफ्तार कर लिया। बाद में उन पर देशद्रोह का इल्जाम लगाया गया। परंतु सन 1991 में जहां सेना ने इसी तरह एनएलडी के पक्ष में गए चुनाव नतीजों को अवैध बताकर खारिज कर दिया था, इस बार उसका शासन गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। इतिहास में पहली बार ऐसे हालात हैं जहां सैन्य शासन को उखाड़ फेंके जाने का भी खतरा है। यह कैसे हुआ?

म्यांमार की जटिल राजनीति में तीन अहम प्रतिभागी हैं। सैन्य शासन सबसे शक्तिशाली और संगठित शक्ति है। जातीय समूह जिनमें से 17 बड़े हैं, वे दूसरे अहम भागीदार हैं। वे पूरे देश में फैले हुए हैं और सन 1948 में ब्रिटिशों से देश की आजादी के बाद से ही सैन्य शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में रहे हैं। कई समूह अधिक क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग कर रहे हैं। तीसरा अहम प्रतिभागी है बर्मन बहुसंख्यक जो देश के प्रमुख हिस्सों पर काबिज हैं और जिन्होंने सैन्य शासन के खिलाफ असैन्य लोकतांत्रिक विपक्ष कायम किया। सन 1991 के बाद से इसका प्रतिनिधित्व एनएलडी ने किया है जिसका नेतृत्व सू ची के पास है। बर्मन बहुसंख्यक विभिन्न जातीय समूहों की अलगाववादी गतिविधियों के भी खिलाफ हैं, हालांकि उन्होंने एक प्रकार से संघीय नीति को स्वीकार किया है। जातीय समूह एनएलडी और बर्मन बहुसंख्यकों को लेकर शंकालु रहे हैं।

म्यांमार में तीन ध्रुवों वाली स्थिति बरकरार है। अगर तीन में से दो भागीदार एक दूसरे के साथ समझ बना लेते हैं तो तीसरा अलग-थलग हो जाएगा। सन 1991 के चुनाव के बाद यही हुआ था। उस समय जब चीन की मदद से सैन्य शासन अधिकांश जातीय समूहों के साथ शांति समझौते और युद्ध विराम में सफल रहा तब उसे यह आजादी मिल गई कि वह असैन्य विपक्ष के साथ क्रूरता से निपटे। आज सैन्य शासन दो वजहों से मुश्किल में है। सू ची के नेतृत्व में एनएलडी अहिंसक विरोध के लिए प्रतिबद्ध है लेकिन इस बार उसने सशस्त्र प्रतिरोध का रास्ता चुना है। उसने राष्ट्रीय एकता सरकार (एनयूजी) नामक समांतर सरकार बनाई है। पीपुल्स डिफेंस फोर्स (पीडीएफ) के नाम से उसकी अपनी सेना है। यह सेना विभिन्न जातीय समूहों की सेनाओं के साथ मिलकर लड़ रही है। इनमें कचिन इंडिपेंडेंस ऑर्गनाइजेशन, द करेन नैशनल यूनियन, द कारेन्नी प्रोग्रेसिव पार्टी और चिन नैशनल फ्रंट शामिल हैं। कुछ अन्य जातीय समूहों ने भी हाथ मिलाया है। इसमें म्यांमार डेमोक्रेटिक अलायंस आर्मी का ट्रिपल ब्रदरहुड अलायंस, ताआंग नैशनल आर्मी और अराकान आर्मी शामिल है। म्यांमार के उत्तरी शान राज्य में सफलताओं के लिए यही गठबंधन जिम्मेदार है। वह राज्य चीन की सीमा से लगा हुआ है। गत 11 अप्रैल को थाई अधिकारियों ने इस बात की पुष्टि की थी कि माए सोत के सामने म्यावाडी में दोनों देशों की बीच की अहम सीमा करेन नैशनल यूनियन के नेतृत्व वाली सेना के हाथों ढह गई। इन सेनाओं ने ड्रोन का इस्तेमाल करके राजधानी नेपिडॉ में सैन्य ठिकानों पर हमले किए। सैन्य शासन दबाव में है, उसके सैनिकों का नैतिक बल गिरा हुआ है। अगर भारत, चीन और थाईलैंड के साथ संलग्न सीमा वाला पूरा इलाका प्रतिरोधक सेनाओं द्वारा नियंत्रित होता है तो जुंटा के लिए आर्थिक हालात बहुत मुश्किल हो जाएगी। चीन एक तरफ सैन्य शासन का समर्थन कर रहा है तो वहीं कई बार वह जातीय समूहों के साथ स्थानीय सौदे करता है जो सीमावर्ती इलाकों पर काबिज हैं।

म्यांमार में गृह युद्ध पहले ही भारत तक आना शुरू हो चुका है। म्यांमार के आम नागरिक और सैनिक दोनों लड़ाई से बचने के लिए सीमा पार कर भारत आ रहे हैं। मिजोरम की सरकार सीमापार के इन जातीय भाइयों को शरण दे रही है। भारत सरकार ने सीमा के कुछ हिस्से की बाड़ेबंदी करने और दोनों देशों के बीच निःशुल्क आवागमन बंद करने का निर्णय लिया है लेकिन इससे यह आवाजाही रुकती नहीं नजर आती। सीमा बहुत लंबी है और कई जगह से आवागमन संभव है। घने जंगल हैं और जल धाराएं भी। अब शायद वक्त आ गया है कि हम सैन्य शासन के समर्थन की रणनीति की समीक्षा करें। संभव है प्रतिरोधक सेनाओं और एनयूजी के साथ चुपचाप संवाद कायम हो। एनयूजी को वैधता हासिल है क्योंकि वह एक निष्पक्ष चुनाव में जीते हुए प्रतिनिधियों से बनी है। अगर हम वक्त से आगे नहीं रहे तो पूर्वोत्तर में शांति और स्थिरता प्रभावित हो सकती है। मणिपुर में छिड़ी हिंसा, चेतावनी का संकेत हो सकती है।

(लेखक पूर्व विदेश सचिव हैं और म्यांमार में भारत के राजदूत रह चुके हैं)

मधुमक्खी पालन से बढ़ता मुनाफा

भारत में तैयार होने वाले आधे से अधिक शहद के लिए विदेश में अच्छा-खासा तैयार बाजार मिल रहा है और मधुमक्खी पालन कृषि क्षेत्र के लिए एक लाभदायक निर्यात गतिविधि के तौर पर उभरा है। लगभग दो दशकों से शहद निर्यात की वृद्धि ने उत्पादन की वृद्धि को लगातार पीछे छोड़ा है। भारत इस प्राकृतिक मिठास के वैश्विक बाजार में छठा सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता है।

भारत के पास शहद के निर्यात को अब वैश्विक बाजार में और बढ़ाने की काफी गुंजाइश है, लेकिन इसके लिए विदेश में नए बाजारों की खोज करनी होगी और शहद के उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, परिवहन और मार्केटिंग से जुड़ी पूरी घरेलू वैल्यू चेन में सुधार की आवश्यकता होगी।

वर्तमान में, निर्यात का बड़ा हिस्सा यानी लगभग 80 फीसदी, अकेले अमेरिका में जाता है जबकि संयुक्त अरब अमीरात (यूएई), सऊदी अरब, लीबिया, मोरक्को और कनाडा जैसे अन्य देशों में इसकी कम मात्रा जाती है। यूरोपीय संघ और दक्षिण पूर्व एशिया जैसे क्षेत्रों में आसानी से नए बाजार खोजे जा सकते हैं। इन दिनों शहद में चीनी की मिलावट पर भी ज्यादा चर्चा होती है जिससे घरेलू बाजार और निर्यात से जुड़े बाजारों में भारतीय शहद की छवि खराब होती है।

इसके अलावा, अब तक मधुमक्खी पालन मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, बिहार और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में ही सीमित रहा है, लेकिन अब इसका विस्तार अन्य क्षेत्रों, विशेष रूप से पूर्वोत्तर भारत में किया जाना चाहिए जहां फूलों वाले पौधों की मात्रा भरपूर है।

दिलचस्प बात यह है कि वर्ष 2005-06 से भारत का शहद उत्पादन लगभग 240 फीसदी बढ़ा है जबकि निर्यात में 260 फीसदी से अधिक की वृद्धि हुई है। हाल के वर्षों में घरेलू उत्पादन के मुकाबले निर्यात बढ़ने के रुझान में तेजी आई है। सरकारी आंकड़ों से संकेत मिलते हैं कि जहां वर्ष 2018-19 और 2022-23 के बीच देसी उत्पादन 72 फीसदी बढ़कर 77,000 टन से 1,33,000 टन हो गया है, वहीं निर्यात में 86 फीसदी की वृद्धि हुई है और यह 43,000 टन से बढ़कर लगभग 80,000 टन हो गया है।

खेती बाड़ी
सुरिंदर सूद

दुनिया भर में शहद की मांग लगातार बढ़ रही है, जिसका मुख्य कारण यह है कि इसके स्वास्थ्य लाभ को लेकर लोगों में जागरूकता बढ़ी है और चीनी के बेहतर विकल्प के रूप में इसका इस्तेमाल भी स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद के तौर पर बढ़ा है। दवा और सौंदर्य प्रसाधन उद्योगों में भी इसका उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। रोग प्रतिरोधक क्षमता के अपने गुणों के कारण महामारी के दौरान शहद को काफी बढ़ावा मिला। इसमें ऐंटी-बैक्टीरियल गुण के साथ-साथ हाइड्रोजन पैरॉक्साइड भी होता है जिसे एक प्रभावी सैनिटाइजर माना जाता है। आयुर्वेद में, प्राकृतिक शहद का व्यापक उपयोग खांसी, कफ, अस्थमा, हिचकी, आंखों में संक्रमण, मधुमेह, मोटापा, कृमि संक्रमण, उल्टी और दस्त के उपचार के लिए किया जाता है। इसके अलावा त्वचा की समस्याओं को भी दूर करने के लिए भी इसे बाहरी त्वचा पर लगाया जाता है।

आधुनिक तकनीकों के आने और प्रवासी मधुमक्खी पालकों के एक नए वर्ग के उभरने के साथ ही मधुमक्खी पालन से होने वाला मुनाफा लगातार बढ़ रहा है। प्रवासी मधुमक्खी पालक फूलों वाले पौधे और परागण के साथ-साथ परस्पर परागित पौधे की तलाश में अपने मधुमक्खियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। मधुमक्खियों का वास्तव में कृषि और विशेष रूप से बागवानी फसलों के साथ परस्पर सहजीवी संबंध है।

मधुमक्खियां फूलों के परागकण और रस से अपना आवश्यक भोजन प्राप्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर मधुमक्खियों से फूलों वाले पौधे को परागण के लिए एक फूल से दूसरे फूल में पराग ले जाने और इसका प्रसार करने में फायदा मिलता है। दुनिया के 2,50,000 महत्त्वपूर्ण फूलों वाले पौधों की प्रजातियों में से लगभग 16 फीसदी के लिए मधुमक्खियों को प्रमुख परागणक माना जाता है।

इसके अलावा मानव आहार का लगभग एक-तिहाई हिस्सा मधुमक्खी परागण के उत्पादों से मिलता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि मधुमक्खियों के माध्यम से परागण, मूली के बीज उत्पादन को 22-100 फीसदी और गोभी तथा खीरे के बीज उत्पादन को 400 फीसदी तक बढ़ा सकते हैं। इससे उपज की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

इस प्रकार, कई मामलों में परागणक के रूप में मधुमक्खियों का आर्थिक योगदान शहद और उसके अधिक मूल्य वाले दूसरे उन उत्पादों के मूल्य से अधिक हो जाता है जिनका उत्पादन मधुमक्खियां करती हैं। इनमें से अधिकांश अन्य उत्पादों में रॉयल जेली, मोम, मधु पराग और मधुमक्खी का विष शामिल हैं जिनकी दवा और सौंदर्य प्रसाधन उद्योगों में अच्छी मांग होती है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वर्ष 2017 में श्वेत क्रांति और हरित क्रांति की तर्ज पर शहद क्रांति लाने का आह्वान किया था जो शहद क्षेत्र के लिए एक बड़ा बदलाव वाला मोड़ साबित हुआ।

राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और मधु मिशन के शुभारंभ के साथ ही एक राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड के गठन ने इस क्षेत्र के तकनीकी आधुनिकीकरण और मधुमक्खी के छत्तों की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि को रफ्तार दी है।

इन निकायों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मधुमक्खी पालन विकास केंद्रों, मधुमक्खी पालकों के समूहों और सहकारी समितियों और विभिन्न प्रकार के किसान उत्पादक संगठनों और स्टार्टअप के उभरने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जो मधुमक्खी पालन और इसके उत्पादों के प्रसंस्करण और मार्केटिंग से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों में लगे हुए हैं।

आईसीएआर देश के विभिन्न कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास कार्यों के लिए, मधुमक्खियों और परागणकों पर एक अखिल भारतीय समन्वित शोध परियोजना भी चला रहा है। किसानों की आमदनी दोगुनी करने में शहद उत्पादन को बढ़ावा देने और मधुमक्खी पालन को उसकी उचित भूमिका निभाने के लिए इन प्रयासों को तेज करने की आवश्यकता है।

आपका पक्ष

डॉक्टरों के लिए जेनेरिक दवा लिखने की अनिवार्यता

अच्छा और सस्ता इलाज हर गरीब का हक है। इसको पूरा करने के लिए जेनेरिक दवा एक ठोस विकल्प है। लेकिन इस प्रयास को अंजाम तक पहुंचाने का रास्ता आसान नहीं है। कई डॉक्टर अपनी पर्ची में जेनेरिक दवाएं नहीं लिखते हैं। स्वास्थ्य से जुड़े मामलों में मरीज भी जोखिम नहीं लेना चाहता है जिससे मरीज डॉक्टर की लिखी महंगी ब्रांडेड दवाएं खरीदने को विवश हो जाते हैं। सरकार ने दवा की दुकानें तो खोल दी हैं लेकिन जेनेरिक दवाइयां अधिक से अधिक प्रचलन में आए, इसके लिए कोई ठोस कार्य योजना नहीं बनाई। हालांकि सरकारी डॉक्टरों के लिए जेनेरिक दवाएं लिखना अनिवार्य किया गया है। विसंगति यह है कि सरकारी डॉक्टर सरकारी अस्पताल में ही बैठते हैं जहां से मरीजों को निःशुल्क सरकारी दवा पहले भी उपलब्ध कराई जाती रही हैं। इसलिए इस नियम का वर्तमान

सरकारी अस्पतालों के डॉक्टरों के लिए जेनेरिक दवाएं लिखना अनिवार्य किया गया है

परिवेश में कुछ खास फर्क पड़ता नहीं दिख रहा है। स्वास्थ्य के मामले में ज्यादातर लोग अब भी सरकारी अस्पतालों पर भरोसा नहीं करते हैं। गरीब से लेकर मध्यवर्गीय लोग निजी चिकित्सकों के पास जाते हैं और निजी दवा दुकानों से ही दवाइयां खरीदते हैं। ब्रांडेड दवा लिखने के एवज में कमीशन का भी बोलबाला रहता है। डॉक्टर कई बार महंगी और गैरजरूरी ब्रांडेड दवाएं लिखते हैं जो कि डॉक्टर की बताई किसी खास दवा दुकान में ही मिलती है। ऊपर से लेकर नीचे तक यह सिस्टम बना हुआ है। इस चलन को तोड़ना बेहद जरूरी है।

सुधीर कुमार सोमानी, देवास

स्वच्छ जल मिलता रहे

अक्सर देश के विभिन्न राज्यों में कभी-कभी दूषित पानी के लोगों की सेहत का दुश्मन और कई बार तो जान का दुश्मन बनने की भी खबरें सुर्खियां बनती हैं। दूषित जल के लिए सरकार और प्रशासन ज्यादा जिम्मेदार है क्योंकि आमजन को सरकार की तरफ से दी जाने वाली मूलभूत सुविधाओं में साफ स्वच्छ जल उपलब्ध कराना मुख्य सुविधा है। देश की नदियां काफी प्रदूषित हो चुकी हैं। शहरों और कस्बों से निकलने वाला गंदा पानी नदियों में छोड़ दिया जाता है। नदी पानी का मुख्य स्रोत है और हम इसे प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। हालांकि केंद्र सरकार ने नदियों को साफ करने के लिए कई योजनाएं बनाई हैं लेकिन ये तब तक सफल नहीं होंगी जब तक कि आम लोग इस अभियान से नहीं जुड़ेंगे। जल है तो जीवन है और अगर हम आज जल संरक्षण नहीं करेंगे तो भविष्य में पानी की किल्लत से दो-चार होना पड़ेगा। पिछले दिनों बेंगलूरु में जल संकट छाया था। यह एक चेतावनी भर है कि अगर अभी भी जल संरक्षण पर जोर नहीं दिया गया तो शहरों में पानी के लिए लोग तरसने लगेंगे। शहरीकरण के कारण भूजल दोहन इतना बढ़ गया है कि यह जमीन में काफी नीचे चला गया है और आम हैंडपंप बेकार होने लगे हैं। अतः जल संरक्षण के लिए लोगों को गंभीर होना होगा और सरकार को ऐसी व्यवस्था बनानी होगी कि हरेक व्यक्ति को साफ पानी घर में ही मिल जाए।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो – पीटीआई

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) ने ओडिशा के चांदीपुर से 'स्वदेशी प्रौद्योगिकी क्रूज मिसाइल' (आईटीसीएम) का सफल प्रक्षेपण-परीक्षण किया।